आत्मकथा
प्रभुआश्रित की
16-3

महात्मा प्रभुआश्रित

जन्म : १८८७—महाप्रस्थान : १६ मार्च १९६७

सरलता-सादगी के प्रतीक-सौम्यसन्त प्रभुआश्रित जी आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व जिन्होंने निर्धनता के आंचल में नेत्र खोले, तपस्या के आंगन में लोरी सुनी, तपती दुपहरी में पोथी पढ़ी, अनिकेत रह कर गृहस्थी संभाली, भूखे रह कर हरिभजन किया, मौन रह कर आराध्य को रिझाया, साधक बन कर योग को साधा, प्रचारक बन कर यज्ञ को विस्तारा, चिन्तन करके गायत्री को सराहा, पोथी पढ़-पढ़ कर जीवन को बांचा, यश-अपयश से परे रह कर नाम-धन अर्जित किया। और अन्त में पंचतत्व की चदरिया को ज्यों की त्यों धर कर जीवनमुक्त हो गए।

आत्मकथा प्रभु आश्रित की

सम्पादन : राज बुद्धिराजा

तुम मरे नहीं, बस मौन हुए

प्रकाशक एवम् वितरक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

दूसरा संस्करण १९८७

प्रभु आश्रित शताब्दी समारोह

मूल्य : २० रुपये

मुद्रक :
डिम्पल प्रिन्टस
गुरु नानक गली, गांधी नगर, दिल्ली-११००३१

अपनी बात

साहित्यिक जगत् में ग्रात्मकथा का विशेष महत्त्व है। इसमें, जो कुछ भी निजी हैं, वह बार-बार बाहर झांकने की कोशिश करता है। गुरुदेव का जीवन वैसे तो खुली पुस्तक की तरह था, जिसे हर वर्ग के लोगों ने बार-बार पढ़ा। उनके साहित्य में उनके वहुमुखी सरल, सहज व्यक्तित्व के दर्शन होते ही रहते हैं। लेकिन इस ग्रात्मकथा में जीवन के कई पहलू उभर कर सामने ग्राते हैं। वचपन से लेकर विदावेला तक का नितान्त निजी रूप को यदि देखना-सुनना चाहें तो इस ग्रात्मकथा को पढ़ जाइए, सब कुछ मिल जाएगा।

ग्रपार जन-समुदाय के लिए गुरुदेव, प्रियजनों, परिजनों के लिए, वंदनीय साधकों के लिए, तपः पूत, ग्रपने लिए, प्रभुग्राश्रित पुकारा जाने वाला यह महान् व्यक्तित्व ग्रपनी भोली-भाली माँ के लिए 'साधु-पुत्र', 'फकीर-पुत्र', 'टेका' ही बना रहा। वस्तुतः यों की लोरी ने ही इनके बचपन को दुलार कर साधु-संतों की कतार में ग्रग्रणी वना कर बैठा दिया। चमक-दमक से दूर निर्धनता के पालने में झूम-झूम कर इन्होंने ग्रपने पात्र को इस कदर चमका दिया, कि साधारण से साधारण वस्तु भी उसका संस्पर्श पाकर कुंदन बन उठती।

जब सारा संसार माया के चमचमाते सौन्दर्य की ग्रोर भाग रहा था, तब ये साधना की एकान्त-स्थली में जाकर मौन रूप से ग्रपनी ग्रात्मा के दर्शन करने में लगे थे। कहा जाता है, कि भूखे भजन न होई गोपाला, मगर इन्होंने भूखे रहकर साधना की, प्यासे रहकर सिद्धि प्राप्त की। ऐसी सिद्धि, ऐसा ग्रमरत्व कि जिसे कोई बिरला ही प्राप्त करता है।

उनके जन्म-शताब्दी के ग्रवसर पर मैं उनके प्रति केवल मौन नमस्कार की ग्रंजलि ही भेंट कर सकती हूँ। घोर ग्रभाव के क्षणों में उनका ही व्यक्तित्व संवल बन जाता है।

गुरुदेव नित्यप्रति डायरी लिखा करते थे। यह डायरी मूल रूप में उर्दू में थी, लेकिन बाद में इन्होंने हिन्दी में भी लिखना शुरू किया। कई डायरियों में इनके अनुभवों का अक्षयकोश मिलता है। उन्हे समय-समय पर उनके भक्तजनों ने लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया।

जन्म शताब्दी की पुण्य वेला में यह निश्चय किया गया, कि इस सौम्य संत की आत्मकथा को प्रकाशित किया जाए। वस्तुतः यह एक वृहद् योजना थी, जिसे क्रियान्वित करना इतना सरल नहीं था। फिर भी उनकी आत्मकथा के प्रथम भाग को सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। इसमें न केवल उनके जीवन की प्रमुख घटनाएँ हैं, वल्कि उस समय के समाज़ का सजीव-स्वच्छ दर्पण है, जिसमें शतवर्षीय इतिहास प्रतिविम्बित होता दिखाई देता है।

इसकी पांडुलिपि तैयार करने में आदरणीय महात्मा दयानन्द जी ने जो परिश्रम किया है, उनके प्रति मैं नत-मस्तक हूं।

आशा है अन्य कृतियों की तरह इस कथा का भी श्रद्धालु भक्त समुदाय में आदर होगा।

राज बुद्धिराजा

अध्यक्ष प्रकाशन विभाग
प्रभुआश्रित जन्म शताब्दी

जी-२३३ प्रीत विहार
दिल्ली-११००९२
दूरभाष-२२४१३६७

आत्मकथा प्रभु आश्रित की

ओ३म्

आत्मचरित महात्मा प्रभु आश्रित जी

प्रथम अध्याय

जन्म व वंश-परिचय—मेरा जन्म ज़िला मुजफ़्फ़रगढ़ तहसील अलीपुर, ग्राम जतोई में २ फाल्गुन बदी, संम्वत् १९४३ विक्रमी, तदनुसार १३ फ़रवरी सन् १८८७ ईसवी, शुक्रवार प्रातः ब्राह्म, मुहूर्त्त में हुआ। सिंह राशि में होने के कारण नाम 'टेका' रक्खा। 'टेका' मुलतानी भाषा का शब्द है, इसका अर्थ है आश्रय, सहारा।

मेरे दादा का नाम श्री चोथूराम था। उनके तीन पुत्र थे—पोखरदास, दौलतराम, जेसाराम। मेरे पिता जी का नाम दौलतराम और माता जी का नाम सभाईबाई था। दादा जी ने आठ दिन पूर्व अपनी मृत्यु का जो समय बता दिया था, उसी समय देहान्त हुआ।

पिता जी का स्वभाव—दादा जी की मृत्यु के पश्चात् मेरे पिता दौलत-राम जी ने भूमि का एक टुकड़ा ख़रीदा। वह एक सम्पन्न धनी के गुमाश्ता थे। बाहर ग्रामीण मुसलमान ज़मींदारों से व्यापार चलता था। पिता जी बड़े शीलस्वभाव, उदारचित्त, मिलनसार, पवित्र विचारवाले शाकाहारी थे। दूर तथा निकट के सभी सम्बन्धियों के साथ बड़ा प्रेम करते थे। रियासत बहावलपुर अच्च शरीफ़ से सभी सम्बन्धी उनके पास आकर ठहरते थे। लोगों का उनके यहाँ आना-जाना रहता। कादिरपुर यूसूफ़ बस्ती, शुमार बस्ती के सम्बन्धी भी उनके यहाँ ठहरते। उन दिनों सम्बन्धियों में प्रेम-प्रीति बहुत थी। बहुत विद्वान् तो न थे, फिर भी लिखने-पढ़ने में चतुर और बुद्धिमान् थे। बाह्य व्यापार-व्यवहार में भी कुशल थे। मेलजोल रखने से वह व्यापारियों में बड़े विश्वासपात्र थे। अतिथि-सत्कार में भी बड़े प्रसिद्ध थे। घोड़े की सवारी का उन्हें बड़ा शौक़ था। अपनी सवारी के लिए बढ़िया घोड़ा रखते थे। हाट-दौड़, मेले-ठेले, कुश्ती आदि में घोड़े पर चढ़कर जाते। विशाल व बलवान् शरीरवाले थे। अपना मकान बना

लिया था। गौ-भैंस व घोड़ा सदा रखते थे; उनसे प्यार करते थे। दूध-दही-मक्खन की कमी न थी। इसे वह घर का सौभाग्य समझते थे।

हमारे इलाक़ों में विवाह आदि पर 'छेज' लगती थी अर्थात् लकड़ी के गाटकों (गतकों) द्वारा खेल होता था और यह अच्छे सौभाग्य की रीति समझी जाती थी। शहर के लोग विवाहवाले के निमंत्रण पर आदर-सम्मान से शामिल होते थे। गाटके बजाकर और एक पाँव पर नाचकर बहुत प्रसन्न होते थे। मांस-मदिरा, हुक्का का रिवाज था।

पिता जी के विवाह के पश्चात् सर्वप्रथम एक देवी ने जन्म लिया जिसका नाम सेत्रीबाई रक्खा गया। तीन वर्ष बाद मेरा जन्म हुआ। मेरा नाम टेकचन्द रक्खा गया। मेरे बाद दो भाई चन्दूराम व ऊधोदास हुए। इस प्रकार घर में आनन्द-मंगल था। मेरे घुँघराले बाल होने से मैं सबको प्यारा लगता था। माँ जब मुझे उठाती तो प्रेम से गोद में लेकर कहती—'मेरा साधु पुत्र! मेरा फ़कीर पुत्र! मेरा ऋषि पुत्र! मेरा मुनि पुत्र!'

स्कूल में प्रवेश और पिता जी का परलोक-गमन—पाँच वर्ष की आयु में मैं स्कूल में प्रविष्ट हुआ, परन्तु पिता के मुख मोड़ते ही मैं रोने लगा तो मास्टर ने मुझे स्कूल से निकाल दिया। कई दुकानों पर हिन्दी (लण्डे) सिखाने के लिए बिठाया, परन्तु व्यर्थ। अन्त में जतोई शहर के सरकारी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। मेरी दादी बहुत वृद्धा थी। मेरे पिता जी तो उसकी सेवा करते थे, परन्तु मेरा चाचा पोखरदास उपराम रहता; जेसाराम क्रूर-क्रोधी स्वभाव का था, दूध की धार निकालने के बाद वह दूध में तिनके मिला देता, ताकि छोटे बच्चों को पीते समय कष्ट हो—माता जी के समझाने के बावजूद भी वह न माना। इसी कहा-सुनी में वह एक दिन माँ के सिर पर लट्ठ मारकर भाग गया, जिससे माँ के सिर से बहुत रक्त निकला। यहाँ तक कि एक बार मेरे पिता जी के सिर पर भी जेसाराम ने सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मोटी शहतीरी से वार किया और वह धड़ाम से गिर पड़े। आवाज़ सुनकर घर के सब लोग नीचे गए, माँ ने शोर मचाया, मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। पूछने पर माँ ने वास्तविकता छिपाते हुए कहा कि सिरसाम हो गया है। पिता जी के प्राण-पखेरू उड़ गए। सब बच्चों को सुला दिया गया, पर मुझे नींद न आई। प्रातः स्कूल गया। जब स्कूल से वापस आया तो पिता जी का शव निकाला जा रहा था।

पिता जी गाय की स्वयं सेवा करते थे। उनके शव को गाय के पास ले गए। गाय ने शव देखा तो प्राण त्याग दिये। पशु को अपने स्वामी से प्रेम था।

थानेदार ने आकर माता जी से बयान लिये और उन्होंने लिखवा दिया कि 'जेसाराम ने लट्ठ मारा और मेरा पति मर गया।' पुलिस ने जेसाराम व पोखरदास को हथकड़ी लगा दी। पंचायत ने क्रियाकर्म के लिए पोखरदास को छुड़वा लिया। तब लोगों ने देवियों (माँ व नानी) को समझाया कि 'तुम्हारे बयान से तो जेसाराम को मृत्युदण्ड मिलेगा। तुम दोनों विधवा हो, तीसरी जेसाराम की पत्नी और विधवा हो जावेगी।' माँ व नानी ने मान लिया।

थानेदार ने सरदार कौड़ा खाँ मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के सम्मुख बयान करवाने चाहे तो माँ व नानी ने बयान दि कि सीढ़ियों से गिर पड़े और मर गए। थानेदार ने कुढ़कर ज्येष्ठ मास की गर्मी में दोनों को धूप में बिठा दिया। मेरा छोटा भाई दुग्धाहारी था; पुलिस ने उसे दूध न पीने दिया। वह बिलख-बिलखकर मर गया। सम्बन्धी घर में सहानुभूति करने आते, पर उन्हें मिलनेवाला कोई नहीं था।

पंचायत ने सरदार कोड़ा खाँ को देवियों के कष्ट और परिवार की तबाही का सच्चा हाल बताकर याचना की कि बचावें। सरदार ने देवियों को घर भिजवाया, और जेसाराम को एक वर्ष का घोर कारावास का दण्ड दिया। माता जी ने बहुत काल तक इस घटना को बच्चों से छिपाए रक्खा; सारा बोझ अपने मन पर ले लिया। भावना यह थी कि बच्चों में द्वेषाग्नि न उपजे।

तेरहवें दिन धर्मसाल में मुझे पग (पगड़ी) बँधवाकर दुकान पर ले गए। हमारे साहूकार अहमद अली खोजा ने मेरा, माँ व नानी के अंगूठे लगवा लिये कि लेन-देन से कोई सम्बन्ध न रहा। ज्येष्ठ मास था। दूसरे हिस्सेदार नारायणदास ने सब वसूली कर ली, और हमारे घर में खाने को अन्न भी न रहा।

थोड़े दिनों बाद दादी मर गई। मैं अनाथ हो गया। मेरी माता छापा-कल्ली जानती थी। दो पैसे के पाँच सेर दाने पीसती। माता व नानी दोनों श्रम करतीं। तीन बजे प्रातः उठकर दाने पीसतीं। छापा-कल्ली के चार आने प्रति भोछण (आभूषण, चुनरी-दुपट्टा) मिलते जिसपर कई दिन लगते थे। इसी पर निर्वाह था। सब सम्बन्धी साथ छोड़ गए थे।

(क) परमात्मा की रक्षा के अलौकिक ढंग

मेरा नाता मेरी भगिनी के तबादले में एक निर्धन परन्तु प्रभाव-शाली परिवार में कर दिया गया। मेरे घर आटा समाप्त होने को आ

गया। माता जी प्रतिदिन सबको भोजन कराकर हाथ जोड़ प्रभु का धन्यवाद करतीं—"देंदा पलेन्दा जीवे," दाता-पालक सदा जीवित रहें। पहले दिन बच्चों को तृप्त कर खिला दिया और सुंधड़े (रोटी रखने का पात्र) में रात्रि को भी बच्चों के लिए दो चपातियाँ रख दीं। माता जी ने एक चपाती खाकर प्रभु का धन्यवाद किया। दूसरे दिन आधी रोटी बची; तीसरे दिन बच्चों को तो खिलाया, माता जी के लिए नहीं बचा और न प्रातराश के लिए कुछ था। बच्चे सो गए। माता जी ने जलपान करके प्रभु का धन्यवाद किया। साथ ही प्रातः के लिए चिन्ता भी थी।

चैत्र मास था। मेरा बहनोई ऑनरेबल सरदार कौड़ा खाँ ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का कारदार (भृत्य) था। सरदार कौड़ा खाँ नदी-पार अपनी भूमि पर गया। खिलवाड़ (खलिहान) गाही (मँडाई) जा चुकी थी। सरदार घर लौटने को तैयार हुआ। वायु चल पड़ी। नदी में पानी चढ़ने लगा। कृषकों ने सरदार से प्रार्थना की कि रातभर रुक जावें, हम दाने-भूसा अलग कर देंगे, प्रातः अन्न-बँटाई हो जावे। सरदार ने मान लिया और अपने कारदार मेरे बहनोई नेभाराम को बुलवा भेजा।

परमेश्वर ने नेभाराम की वृद्ध माता को प्रेरणा दी कि 'अपने साले टेका को फ़सल-बँटाई पर साथ लेते जाओ; ग़रीब है, पता नहीं खाने को अन्न भी है या नहीं; सरदार से कुछ अन्न दिलवा देना!' नेभराज ने पहले तो इन्कार किया, परन्तु उसकी माता ने कहा—'मेरे चिट्टे चूण्डे (सफ़ेद बालों) की लाज रख, टेका को ज़रूर लेजा।' नेभराज ने कहा—'क्या कहूँगा? कैसे करूँगा?'—माँ ने समझाया—'दो पैसे के पतासे (बताशे) उसे ले देना, वह सरदार के सामने रख देगा और सलाम कर देगा। तू कुछ न बोलना!' नेभराज ने स्वीकारा।

आधी रात थी। मेरी माता जी जाग रही थीं, प्रार्थना कर रही थीं—'कृष्ण कन्हैया, मेरी लाज रखना! मेरे घर अन्न नहीं, बच्चे क्या खावेंगे?'

प्रातःकाल नेभराज ने मुझे आवाज़ दी। माता जी के कहने पर मैं नीचे उतरा तो नेभराज ने कहा आओ चलो! मैं साथ हो लिया। प्रभु की लीला! रात्रि कोजो जल नदी में वेग से बह रहा था, वह वेग कम हो गया था। हमने नदी आराम से पार की।

मैंने कौड़ा खाँ को प्रणाम किया। पतासे उसके सामने रख दिये। खिलवाड़ पर अभी और कोई साधु-फ़क़ीर नहीं आया था। कौड़ा खाँ समझा यह निर्धन बालक है तो कारदार को बुलाया और कहा—'इस बालक को आधा मन अन्न भर दो!' फिर गदंभवाले को कहा कि इस बालक को घर

पहुँचा दो !'

घर पर माँ व्याकुल थी कि टेका कहाँ गया? सूर्योदय होते घर पहुँचा। गर्दभवाले ने कहा—'माता जी! अपना बालक व दाने सँभालो!' माँ गद्गद हो गई। मेरा भाई अभी सो रहा था। मुझे स्कूल जाने में देरी हो रही थी, मैं किताबें लेकर भागा। परमात्मदेव ने माँ की लाज रख ली। माँ ने दाने साफ़ किये, पीसे। अब तो एक महीने के निर्वाह का प्रबन्ध हो गया था। प्रभु की विचित्र लीला है! नेभराज की माता के अन्दर दया-भाव आना, नदी का पानी थम जाना, कौड़ा खाँ के मन के अन्दर उदारता आनी, ऐसी घटना को देख-सुनकर भक्त का हृदय अपने-आप प्रभु-चरणों में झुक जाता है, प्रीति का प्रवाह उमड़ पड़ता है।

अलीपुर स्कूल में प्रवेश—जीजा नेभराज मुझे अलीपुर स्कूल में प्रवेश कराने के लिए लाए। स्कूल में बैठा तो मास्टर साहिब ने ब्लैकबोर्ड पर अंग्रेजी का शब्द COMFORT लिखकर कहलवाया—'C-O-M-F-O-R-T कं-फ़र्-ट।' सब बोले—'कम्फ़र्ट।' मास्टर जी ने कहा—'कोई अपने-आप बोले।' कोई न बोला। मैंने कहा—'मैं बताऊँ?' बोले—'बताओ!' झट कहा—'COMFORT।' मास्टर जी प्रसन्न हुए। उनके पूछने पर कहा—'प्रवेश पाने के लिए आज आया हूँ।' तुरन्त प्रवेश मिल गया। नेभराज ने कहा—'यह निर्धन है, अनाथ बालक है, फ़ीस मुआफ़ की जावे!' मास्टर जी ने कहा—'तुरन्त तो मुआफ़ नहीं हो सकती!' नेभराज चला गया। मुझे छात्रावास में स्थान मिल गया, परन्तु रात्रिभर रोता रहा।

(ख) रक्षा के अलौकिक ढंग

मुख्याध्यापक ने मुझे शुल्क से मुक्त कर दिया, परन्तु आटा लेने के लिए प्रति शनिवार मुझे घर जाना पड़ता था।

एक दिन मुख्याध्यापक ने पूछा—'घर क्यों जाते हो?'

मैंने उत्तर दिया—'आटा लेने जाता हूँ।'

मुख्याध्यापक—'कितना आटा लाते हो?'

'मैं—पाँच सेर।'

मुख्याध्यापक—'इतना? हम दो जीव हैं—मैं और मेरी धर्मपत्नी, हम तो इतना सप्ताहभर में नहीं खा सकते। हमारा तो आधा-आधा पाव खर्च होता है।' फिर मुख्याध्यापक ने छात्रावास के प्रबन्धक को बुलाकर कहा कि

'अब से छात्रों की चपातियाँ गिनकर उनके नाम लिखा करो !' इस तरह मेरा आटा बहुत कम हो गया।

एक दिन मुख्याध्यापक ने पूछा—'क्या खर्च आता है ?'

मैं—'एक रुपैया मासिक।'

फिर मुख्याध्यापक महोदय मुझे जयदयाल मुंसिफ़ के पास ले गए और कहा कि एक रुपया इस छात्र की छात्रवृत्ति लगा दें। मुन्सिफ़ ने बड़ी कठिनाई से स्वीकार किया और कहा—'प्रति मास पहली तिथि को आ जाया करो !'

पहली तारीख़ को मैं गया तो मुझे कहा कि कचहरी के द्वार पर ठहर जाओ ! जो अभियुक्त आता, अर्दली उससे मुझे एक पैसा दिलवाता; जब मेरे चौंसठ पैसे हो जाते तो मैं चल देता। कितना अपमानजनक था ! पर मरता क्या न करता ! पाँच मास तक यही काम जारी रहा।

मेरे पिता ने किसी व्यक्ति से ३० रुपये वापस लेने थे। मेरे बहनोई ने वसूल करके मुझे ला दिये। मेरे चाचा जेसाराम ने ऋणी पर अभियोग दायर कर दिया। घूँस देकर अभियोग की अपने पक्ष में डिग्री भी करा ली। मेरी एक रुपया छात्रवृत्ति भी बन्द करा दी। कचहरी में कर्मचारियों को दया आई। एक अहलमद (कर्मचारी) ने मुझे कहा कि 'तुम यह समान ले जाया करो और इस प्रकार उनके स्थान भर दिया करो।' उसके बदले में मुझे एक आना मिल जाता। तब तो बालक होने के नाते उनका धन्यवाद करता या न, यह नहीं कह सकता, परन्तु अब तो उनकी स्मृति आने पर प्रभु की इस असीम कृपा और गुप्त सहायता के लिए प्रेम-अश्रु बह जाते हैं।

एक दिन ऐसा भी आया कि शनिवार को छात्रावास के प्रबन्धक ने बुलाकर कहा कि 'टेकचन्द ! तुम्हारे ज़िम्मे पाँच सेर आटा निकलता है, ले आओ, नहीं तो रोटी आपके लिए बन्द हो जावेगी। जाओ माँ से आटा ले आओ।'

(ग) रक्षा के अलौकिक ढंग

छुट्टी लेकर चल पड़ा। दस मील की यात्रा थी। मार्ग में विचारों की ऐसी उथल-पुथल होती रही कि पाँच मील पर ही थक गया, हालाँकि पहले कभी थकान नहीं होती थी। कच्ची सड़क से कुछ दूर एक कूप था, वहीं जाकर बैठ गया और विचार करने लगा कि जा तो रहा हूँ भगवान् जाने

कि माँ के पास आटा होगा भी या नहीं ! क्या कहेगी ? अच्छा पुत्र पढ़ने गया कि उसकी आटे की माँग ही समाप्त नहीं होती ! यदि कहीं उसके पास आटा न हुआ तो वह यह जानकर कि टेकचन्द की रोटी बन्द हो जावेगी, सिवाय रोने के और क्या करेगी ! और मेरा पढ़ना बन्द हो ही जाएगा ! अब तो फिर किसी हलवाई की दुकान पर बर्तन ही माँजने पड़ेंगे ।

परन्तु वाह रे प्रभु तेरी लीला ! समय बीतता जा रहा था, घबड़ा-सा गया कि कब पहुंचूँगा ? लगभग आधा मार्ग तय किया होगा कि पीछे से एक अश्वारोही आ मिला । उसने देखा बालक घबड़ाया हुआ है और थका हुआ प्रतीत होता है । पूछा—'वत्स ! कहाँ जाते हो ?' मैंने उत्तर दिया कि 'जतोई घर जाता हूँ ।' अश्वारोही ने जब मेरी मासूम व घबड़ाई आवाज़ सुनी तो उसका हृदय आर्द्र हो गया और कहा—'मेरे पीछे चढ़ आओ !' अश्वारोही लाला रैमलदास अर्ज़ीनवीस था । जो मूलचन्द विद्यार्थी, जिसने पहले दो दिन भोजन खिलाया था, उसका मामा था । मूलचन्द इस वर्ष से स्कूल छोड़कर घर चला गया था । लाला रैमलदास का घर छोटी जतोई में था । वह वहीं जा रहे थे कि मार्ग में यह बात हुई ।

लाला साहिब—'वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है ?'

मैं—'मेरा नाम टेकचन्द ! छठी कक्षा में पढ़ता हूँ ।'

लाला—'किसके पुत्र हो ?'

मैं—'चौधरी दौलतराम गाडी का ।'

लाला—'क्या काम करते हैं ?'

मेरा मन भर आया और भरे स्वर से बोला कि, वह मर चुके हैं ।'

लाला—'अब तुमको ख़र्च कौन देता है ? घर अब क्या लेने जा रहे हो ? अकेले बिना किसी साथी के और इतनी दूर से ?'

मेरा दिल पहले ही भर गया था, अब यह प्रश्न सुनकर बोल न सका । दो-तीन मिनट तक लाला साहिब ने प्रतीक्षा की, फिर पीछे मुड़कर देखा तो मेरी आँखों से आँसू टपक रहे थे, इसलिए जवाब न दे सकता था । लाला जी के मन में दैववशात् करुणा तो पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी, यह दशा देखकर और आर्द्र हो गए । बड़े वात्सल्य-भाव से पूछा तो मैंने उत्तर दिया—'बोर्डिंग का आटा देना है । मास समाप्त हो रहा है । आटा ज़रूरी लाना था और कोई साथी आने को तैयार न था । शरद् ऋतु है, चार बजे छुट्टी मिली । सूर्य जल्दी अस्त हो जाता है, इसलिए देर हो गई ।' यह सब दर्दभरे स्वर से बतलाया ।

लाला जी के मन में दया उपजी और बोले—'अच्छा पुत्र, परसों सोमवार मैं वापस अलीपुर जाऊँगा, तुम मेरे साथ चढ़ आना। जितना आटा देना है, केवल उतना ही बाँधना, आगे के लिए माता से न लेना ! तुम मेरे घर चलकर रहो, मेरे घर में रोटी खाया करो और मेरी बैठक में अपना बिस्तरा-सामान लगा दो, वहीं सोना। मैं मूलचन्द हसीजा का मामा हूँ। तुम मुझको अपना मामा कहकर पुकारा करो और मेरी स्त्री को मामी कहकर बुलाना। वह जतोई छोटे की है, तुमको अपने शहर का जानकर प्यार करेगी, तुम्हें कोई कष्ट न होगा। परसों से बोर्डिंग छोड़ देना !'

इनके करुणामय शब्द सुनकर कृतज्ञता के आँसू वह निकले। सहसा मुख से निकला—'मैं इतना भार बिन वदल कैसे उठाऊँगा ?'

लाला—'पुत्र ! भार कोई नहीं, घर में तुम बालकों की तरह रहोगे। यदि तुम्हें भार प्रतीत होता है तो अपनी मामी को पानी का घड़ा भर दिया करना !'

मैं—'बहुत अच्छा !'

इस तरह जतोई पहुँचे। छोटी जतोई आगे थी, मुझे मेरे घर पर उतार दिया और बोले—'परसों सवेरे इसी स्थान पर आ बैठना, मैं तुम्हें ले चलूंगा।'

मैं घर गया। माता व नानी के चरण स्पर्श किये। माता जी ने पूछा कि 'तुम तो कह गए थे कि नहीं आऊँगा, फिर कैसे आ गए ?'

मैं—'आना तो नहीं था, परन्तु मास पूरा हुआ, आटा का हिसाब चुकाना था, आगे के लिए भी ले-जाना था।' रास्ते में रैमलदास के मिलने का पूरा हाल सुनाया कि घोड़े पर आया हूँ। माता जी के आँसू निकल पड़े।

सोमवार माता जी ने रोटी खिलाकर आटा बाँध दिया। लाला रैमलदास जी मुझे घोड़े पर बिठाकर अलीपुर ले आए। स्कूल में आटा प्रबन्धक-छात्रावास को दिया और छात्रावास त्याग दिया।

स्कूल-टाइम के बाद अपना सामान लेकर रैमलदास जी के घर चला गया। लाला रेमलदास ने अपनी पत्नी को पहले कह दिया था कि 'मैं एक अनाथ बच्चे को लाया हूँ, वह मूले का साथी है और तुम्हारे शहर का है, लड़का सज्जन है तुम्हारा छोटा-मोटा काम कर देगा। हमारी सन्तान नहीं, शायद भगवान् हमारी गोद भी हरी-भरी कर दे !'

लाला रैमलदास की पत्नी दयालु स्वभाव की थी, प्यार से रखने लगी। रहने-खाने को स्थान मिल गया। पानी भर देता था।

एक सायं मामी ने खिचड़ी वनाई। मुझे खिचड़ी से घृणा थी। लाला रैमलदास भोजन कर आए और मुझे खिचड़ी खाने को कहा तो मैंने कहा—'मुझे खिचड़ी अच्छी नहीं लगती।' रैमलदास ने कटु भाषा में कहा—'अनाथ-मुफ़्तख़ोर होकर नख़रा करता है? शरम-शरम!' इतने शब्दों में न जाने क्या जादू भरा था कि मैं गया, मामी से माँगकर खिचड़ी खाई, खिचड़ी का मतवाला वना।

मुझे बैठक में निवास करते तीन दिन हो गए, परन्तु कमरे की सफ़ाई न की। चौथे दिन लाला रैमलदास जी ने क्रोध में आकर कहा कि 'अरे कितना मूर्ख है! तुमसे तो कुत्ता भी अच्छा जो जहाँ बैठता है, दुम फेरकर पहले सफ़ाई कर लेता है!' मुझे यह बात रुच गई। तब से प्रति-दिन प्रातःकाल ही सारे कमरे की सफ़ाई कर देता और लाला जी के बैठक में आने से पहले उनके लिए हुक्का तैयार कर रखता।

गायत्री प्रवेश—अलीपुर में आर्यसमाज के प्रचार-हेतु पण्डित गिरधारी लाल जी आए। अपने व्याख्यान में उन्होंने गायत्री मन्त्र को पूजा का श्रेष्ठतम मन्त्र वताया। मेरी प्रार्थना पर मास्टर दरबारी लाल जी ने मुझे याद करा दिया। गायत्री मन्त्र में मेरी रुचि बढ़ी। कूप के रहट की ध्वनि के साथ जप करने में लीन हो जाता था। गायत्री के सम्बन्ध में सुना था कि भव-सागर से पार कर देती है। विश्वास हो गया। बड़ी लग्न से जप करता रहा।

सफलता के चिह्न

(१) वोदल माता को फोड़ा निकला हुआ था, पीड़ा थी। मुझे कलाम (मन्त्र) पढ़ने को माता ने कहा। मैं हाथ फेरकर गायत्री मन्त्र पढ़ता रहा, फूँका भी देता रहा। माता जी को आराम आया, आसीस दी।

(२) नोतन नागपाल की माता को फोड़ा निकला। माता जी के कहने पर इसी गायत्री मन्त्र का प्रयोग किया और उस माता को भी आराम आ गया।

(३) मेरी माता जी को बिच्छू ने काट लिया। पानी अभिमन्त्रित करके पिलाया तो दर्द दूर हो गया।

इस तरह गायत्री में मेरी ख़ूब श्रद्धा बढ़ी और बड़े विश्वास व श्रद्धा से जाप करने लगा।

लाला रैमलदास जी के पास रहते हुए छः साल गुज़र गए। एक

दिन वह मुझसे कहने लगे—'अनाज की ढेरी में से दाने निकले हुए हैं। बतलाओ, तुमने कहाँ दिये हैं?' यह सुनते ही मेरे पाँव-तले से ज़मीन निकल गई! चकित मूढ़-सा हो गया। लाला साहिब को क्रोध आ गया; अपशब्द प्रयोए करके कहा—'चोर कहीं का! बेहया! बेशर्म! एक हम अन्न खिलावें, दूसरा हमारी चोरी भी करे?'

मैंने कहा—'लाला जी! मुझे ज्ञान नहीं है। आप आवेश में न आवें।'

लाला जी—'तुम्हारे सिवाय यहाँ और कौन रहता है? सब-कुछ तुम्हारे अर्पण है, फिर कहता है कि मुझे पता नहीं! बस यहाँ से चले जाओ, बिस्तरा गोल करो!'

मेरे मन में तो मैल था नहीं, परन्तु आज्ञाकारी था। अनुनय-विनय करना जानता न था। निर्धनता अवश्य थी, फिर भी माता जी ने सन्तोष की घुट्टी पिला रखी थी। देर न की, बिस्तर व बस्ता उठा लिया, लाला जी के पाँव छुए और बोर्डिंग में पहुँच गया।

सोचा, बिना मुख्याध्यापक की आज्ञा के प्रवेश कैसे होगा, बिना आटा दिये रोटी कैसे मिलेगी? अभी ढाई वर्ष और पढ़ना है, कैसे निर्वाह होगा? चिन्ता में था, परन्तु प्रभुदेव की लीला अद्भुत है!

(घ) रक्षा के अलौकिक ढंग

मेरा उस समय न कोई आश्रय था, न वसीला। विवशता से छात्रावास में जा खड़ा हुआ। वह समय घर जाने का भी न था। न कोई परिचित, न सम्बन्धी, न कोई ठिकाना। लाला छबीलदास छात्रावास के प्रबन्धक थे, स्वभाव के दयालु थे; पूछा कि 'बिस्तरा-सामान क्यों लाए हो?'

मैंने उत्तर दिया—'लाला रैमलदास जी ने घर से निकाल दिया है।' इतने में मुख्याध्यापक सरदार राँझा ख़ाँ बी० ए० मुसलमान लड़कों की किसी शिकायत की जाँच के लिए आ गए। मैंने व प्रबन्धक ने प्रणाम किया। वह आवेश में थे और मुसलमान पाचक से कटु बोल रहे थे। प्रबन्धक डर रहा था।

मुख्याध्यापक ने मुख मोड़कर मेरी ओर देखा, मैंनिमाणी (दीनता-भरी) शक्ल बना, हाथ जोड़कर खड़ा था। प्रबन्धक ने डरते-डरते कहा—'टेकचन्द को जहाँ से भोजन मिलता था, वहाँ से जवाब मिल गया है, नितान्त निर्धन अनाथ बालक है।'

मैं उन्हीं से पढ़ता था। वह स्वयं मुझे जानते थे। परमेश्वर की दया विचित्र हुई ! मुख्याध्यापक के मुख से निकला—'आज से टेकचन्द निःशुल्क छात्रावासी समझा जावे और इससे आटा-सब्ज़ी का कुछ भी खर्च न लिया जावे !' यह कहकर चले गए।

लाला रैमलदास रात को जब घर के अन्दर गए तो क्रोध में थे। मेरे साथ पढ़नेवाले कुछ लड़के आए और उन्होंने पूछा—'टेका कहाँ है ?' तो लाला ने आवेश में कहा कि 'उस नमकहराम को निकाल दिया है।' लड़कों ने कहा—'लाला जी वह ऐसा न था।' कहकर वापस चले गए।

भोजन तैयार था, लाला जी खेल से निवृत्त हुए तो धर्मपत्नी ने कहा—'आज बड़ी देर लगा दी ! अभी तक टेका भी नहीं आया ?'

मेरा नाम सुनते ही लाला जी फिर आवेश में आ गए और बोले कि 'मैंने उसका बिस्तरा-बोरिया उठवा दिया है।'

स्त्री ने पूछा—'ऐसा क्यों ?'

लाला जी ने कहा—'उस नमकहराम ने दाने चुरा लिये !'

मामी (लाला की धर्मपत्नी) ने दुःखी होकर कहा—'अनाथ निर-पराध पर व्यर्थ का आरोप लगाकर निकाला ! दाने तो आपका भाई आसू ले गया है। टेका स्कूल गया हुआ था, आप कचहरी गए थे, आसू आया, चाबी लेकर एक टोपा दाने आपके दानों में से ले गया था।'

लाला जी—'तो फिर मुझसे क्यों नहीं कहा ?'

मामी—'आज की ही तो बात है ! आप अभी ही घर में आ रहे हो, कहती तो कब कहती ?'

वंश की सब देवियाँ विस्मित हो गईं। सबको बेचारे टेका की निर्धनता पर दया आई; दुःख प्रकट करने लगीं। परमेश्वर ने स्त्री जाति को अत्यन्त कोमल हृदय प्रदान किया है। मामी तो दिल में बहुत ही दुःखी हुईं; कहने लगीं—'सायं के इस कुसमय में ग़रीब निरपराध को निकाला ! बेचारे को भूख लगी होगी ! यहाँ उसका न कोई राही न पाही (न सगा न रक्षक) कहाँ आश्रय लेगा ? कहाँ पेट भरेगा ? ग़रीब क्षुधा के मारे ठण्डी आह निकालेगा। अब भी उसे ढूंढ लावें, कहीं-न-कहीं छिपा बैठा होगा। अवश्य ढूंढ लावें।'

लाला जी ने कहा—'अब बहुत देर हो गई है, कल उसका पता करूँगा।'

मामी ने बहुत अनुनय की, परन्तु वह न माने।

दूसरे दिन कचहरी जाने से पूर्व मामी जी ने टेका को ढूंढ लाने की

याद दिलाई। लाला रैमलदास छात्रावास पहुँचे और द्वार पर खड़े होकर मुझे बुलाया। मैं आया और चरण-स्पर्श किया।

लाला जी—'वत्स ! मुझे पता न था, तू निरपराध है। तेरी मामी बहुत दुःखी है। वह तो मुझे रात को ही तुझे लाने को कह रही थी, परन्तु देर होने के कारण मैं न आया। अब अपना विस्तरा उठाओ और चलो !'

मैंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'आपकी व मामी जी की बड़ी कृपा है। अब मेरा यहाँ स्थायी प्रबन्ध हो गया है। निःशुल्क छात्रावासी बन गया हूँ और अब न चलने के लिए क्षमा माँगता हूँ।'

लाला जी ने आग्रह किया—'माता-पिता बच्चों को ताड़ना किया ही करते हैं। तुम ज़रूर चलो, क्रोध न करो, तुम्हारी मामी बहुत उदास है।'

मैंने कहा—'मैं आपका नमक खाता रहा हूँ, मैं सदा के लिए आपका कृतज्ञ रहूँगा। मुझे कोई रोष नहीं है। मामी जी की मुझपर अत्यन्त दया रही है, माता की तरह पालना की है। मैं कभी-कभी आता-जाता रहूँगा, चरण स्पर्श कर जाया करूँगा।'

लाला जी निराश होकर चले गए। मामी जी को हाल जा सुनाया। सभी चुप हो गए।

कुछ दिन बीते, आसुराम फिर आ गया। बैठक में किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ी तो पूछा—'काका जी ! टेकचन्द कहाँ है ?'

लाला जी ने कहा—'उसे मैंने चोर समझकर निकाल दिया है। मैंने समझा उसने दाने चुराए थे···'

अभी लाला जी अपनी बात पूरी न कर पाए थे कि आसुराम ने कहा—'काका, दाने तो मैं ले गया था। भरजाई जी को कह भी गया था !'

लाला जी ने कहा—'हाँ, यह तथ्य बाद में पता लगा।'

जिलाधीश सरदार मुहम्मद नसीर खाँ अपनी धर्मपत्नी के साथ स्कूल देखने गए। मैंने उनके प्रश्नों के उत्तर अंग्रेज़ी में दिये। एक आँग्ल कविता भी सुनाई जिसका बड़ा प्रभाव पड़ा। यह समाचारपत्रों में भी छपा। सरदार मुहम्मद नसीर खाँ ने दो आने मुझे इनाम दिया; बुद्धि की प्रसिद्धि हुई।

बालक के धर्म-बल का जादू

पहला चमत्कार—मास्टर रामकिशन जी का पाचक गालाराम एक दिन अनुपस्थित था। मास्टर जी का अतिथि आ गया। भोजन छात्रावास

में बनवाया। मास्टर जी मुझसे प्रेम करते थे, क्योंकि मैं उनके उपदेश ध्यानपूर्वक सुनता था। मास्टर जी ने पाचक को कहा कि थाली टेके के हाथ भेज देना। पाचक ने थाली मेरे आगे करके कहा—'लो, ले जाओ!' मैंने देखा मांस है तो इन्कार कर दिया। पाचक आवेश में आया और मास्टर जी को जाकर शिकायत की कि मांस होने के कारण वह थाली नहीं उठाता। मास्टर जी की ताड़ना कठोर थी। लड़के उनसे काँपते थे। मुख्याध्यापक भी उनका लोहा मानते थे।

मास्टर जी ने कहा—'टेके को मेरे पास भेजो और थाली किसी और के हाथ भेज दो!'

मैं काँपता-काँपता अन्दर गया। दैवी शक्ति मेरे मन को थामे हुए थी। मास्टर जी ने पूछा—'थाली क्यों नहीं लाए ?'

मैंने उत्तर दिया—'मांस था, जिसे देखते वमन हो जाता है।'

मास्टर जी सुन्न हो गए, जैसे ज़बान पर ताला लगा हो। कुछ देर में कहा—'अच्छा, थाली किसी दूसरे लड़के के हाथ भिजवा दो।'

मैं वापस चला आया। आशंका थी कि मार पड़ेगी, परन्तु अन्दर से कोई शक्ति उत्साह दे रही थी।

सायं समय जब सन्ध्या के लिए एकत्रित हुए तो मास्टर जी ने कहा—"निस्सन्देह यह मेरी बड़ी त्रुटि है कि उपदेश तुमको देता हूँ और दोषी स्वयं हूँ। टेके की निर्भयता को देखकर समझता हूँ कि यह धर्म की बात है। टेके का जादू मुझपर असर कर गया है। अब मैं मांस त्यागने की प्रतिज्ञा करता हूँ।"

दूसरा चमत्कार—लाला जीवनदास पटवारी का पुत्र चन्द्रभान पाँचवीं कक्षा में आते ही बीमार हो गया और नौ मास रोगी रहा। दिसम्बर में स्वस्थ होकर स्कूल आया। पढ़ाई में कमज़ोर था। उन दिनों इन्स्पेक्टर स्कूल की परीक्षा लेकर पास-फ़ेल करते थे। स्कूल मास्टर ने चन्द्रभान को कक्षा से निकाल दिया, कारण कि परीक्षा में फ़ेल होगा तो बदनामी होगी। इतने में मैं पहुँचा; पूछने पर चन्द्रभान ने हाल सुनाया। इन्स्पेक्टर साहिब कमरे में आ चुके थे। मैंने कहा—'चन्द्रभान, अन्दर आओ! इन्सपेक्टर तुमसे वही पूछेगा जो तुम्हें आता है। डरते-डरते वह आ गया। इन्स्पेक्टर के सामने मास्टर जी चुप रहे। इन्स्पेक्टर ने पुस्तक के पहले पृष्ठ से चन्द्रभान से प्रश्न किया जिसका उसने धाराप्रवाह उत्तर दिया। चन्द्रभान पास हो गया। चन्द्रभान मेरा श्रद्धालु प्रेमी बन गया।

यूनिवर्सिटी परीक्षा—यूनिवर्सिटी का पाँच रुपये प्रवेश-शुल्क था। सब लड़कों ने मुख्याध्यापक के माँगने पर दे दिया। मेरे पास रुपये थे नहीं। मैं तो रोटी भी निःशुल्क खाता था।

मुख्याध्यापक—'लाओ, लाओ, कहीं से लाओ! माँ से उधार लाओ!'

मैं--'हुज़ूर! माँ से क्या कहूँ? वह तो चक्की पीसकर गुज़ारा करती है। दो पैसे तीन घण्टे दाने पीसने पर प्राप्त होते हैं। हम ग़रीबों को उधार भी कौन देगा?'

मुख्याध्यापक—'टेकचन्द! आठ वर्ष पढ़े हो, प्रवेश-शुल्क की ख़ातिर परीक्षा में न बैठ सकोगे। तुम्हारे कारण मैं सबके दाख़िले रोके हुए हूँ।'

प्राइमरी अध्यापक मौलवी निज़ामुद्दीन ने कहा—'शेख़ साहिब! आख़िरी दिन तक प्रतीक्षा करें, शायद प्रभु कोई राह निकाले।'

अन्तिम दिन आ गया। डाक बँगले में Settlement Officer आ ठहरा। मौलवी निज़ामुद्दीन ने कहा—'टेकचन्द! अर्ज़ी लिखो और मुख्याध्यापक सम्पुष्टि कर दें तो सहायता मिल जावेगी।'

ऐसा ही किया गया। अर्ज़ी लेकर डाक बँगले गया। अर्दली ने मुझसे अर्ज़ी ले ली और मुझे भी अन्दर ले गया। मैं डर से काँप रहा था। साहिब पण्डित हरिकिशन कौल थे, पूछा--'कितनी फ़ीस है?'

प्रणाम करके मैंने उत्तर दिया—'पाँच रुपये।'

साहिब ने तुरन्त पाँच रुपये दे दिये। मैं प्रणाम करके वापस आया और मुख्याध्यापक को थमा दिये।

प्रभु की विचित्र लीलाएँ

(क) यूनिवर्सिटी की परीक्षा का सैंटर मुलतान में था जो अलीपुर से ६६ मील दूर था। अलीपुर से मुज़फ़्फ़रगढ़ तक ५० मील ताँगे का रास्ता था, मुज़फ़्फ़रगढ़ से मुलतान १६ मील रेल का सरकारी डाक भी अलीपुर से ताँगे पर जाती थी। सरदार जान मुहम्मद ख़ाँ हाजी ठेकेदार थे। ताँगे का किराया प्रति सवारी चार रुपये था। मास्टर राघराम जी परीक्षार्थियों के साथ जा रहे थे। चार परीक्षार्थियों व मास्टर जी ने तो किराया दिया और ताँगे पर बैठ गए, मैं निमाणा निर्धन नीचे बिस्तरा सिर पर रक्खे खड़ा था। सरदार जान मुहम्मद भी उसी ताँगे पर मुज़फ़्फ़रगढ़ जा रहे थे। सरदार की दृष्टि मुझपर पड़ी तो मास्टर जी से पूछा—'यह लड़का कौन है? सामान लेकर नीचे क्यों खड़ा है?'

मास्टरजी—'है तो यह भी परीक्षार्थी, परन्तु निर्धन है, किराए की रक़म इसके पास नहीं है।'

सरदार—'ताँगे में आठ व्यक्ति तो पहले हो गए हैं। सड़क भी कच्ची है।'

मास्टर—'लड़का आठ वर्ष पढ़ा है, बड़ा योग्य भी है। किराया न होने के कारण रह गया तो बड़ा दुःख होगा।'

सरदार ने मेरी निमाणी शक्ल देखी तो उसके आँसू आ गए; कहा—'वत्त ही अल्लाह! वत्त ही अल्लाह! (प्रभु तेरा सहारा! तू रक्षा करना!) फिर मुझसे बोला—'आ बच्चा, आ जा!' अपनी झोली में बिठा लिया। घोड़े को प्यार किया और ताँगा चल पड़ा।

मुज़फ़्फ़रगढ़ पहुँच गए। मुलतान का किराया किसने दिया, यह अभी तक रहस्य है।

मुलतान पहुँचने पर समस्या उठी कि अब कहाँ जाऊँ? बड़ा शहर··· नावाक़फ़ीयत···रोटी कहाँ खाऊँगा?

अकस्मात् मास्टर रामकिशन जी आ गए। वह मुलतान-निवासी थे। उन्होंने लोहारी दरवाज़े के अन्दर बँगला सेवाराम में ठहराया। ढाबे पर आराम से रोटी खाते रहे।

परीक्षा समाप्त हुई तो सब लड़कों ने गोलगप्पों का स्वाद लिया और सब लड़के ख़ुशी-ख़ुशी घर लौटे। मेरा व्यय किसने किया, मुझे पता नहीं।

जतोई पहुँचा—माता व नानी ख़ुश हुईं कि अब कष्ट की घड़ियाँ समाप्त होने वाली हैं—टेका नौकरी करेगा, आराम से जीवन बीतेगा; किन्तु परीक्षा का परिणाम आने तक कोई काम-धन्धा न बन सका। मैं अभी आगे भी पढ़ना चाहता था।

पढ़ाई के अन्तिम दिन मुख्याध्यापक ने लड़कों से पूछा—'अब क्या करोगे?'

मैंने अपनी बारी पर कहा—'बी० ए० तक पढ़ूँगा।'

मुख्याध्यापक—'तो क्या ज़िलाधीश बनोगे?'

मैंने कहा—'हाँ।'

मुख्याध्यापक—'यदि हमारे ऊपर कोई अभियोग बन जावे और तुम्हारे सामने आवें तो हमारा पक्ष लोगे न?'

मैं—'कभी नहीं।'

मुख्याध्यापक—'अच्छा बच्चू ! तब तू ज़िलाधीश भी बन चुका !'

संस्कारगत शिक्षा—मेरी माता व नानी बड़ी दयालु थीं। हमको शिक्षा भी देती थीं। मुझे स्मरण नहीं पड़ता कि सुन्धड़े (चपातियों के पात्र) से कभी रोटी स्वयं निकाली हो या और कोई खाने की वस्तु स्वयं उठाकर खाई हो। वह दयालु इतनी थीं कि हम बच्चों के लिए अपना पेट काटकर भी खाना सँभाल रखती थीं।

एक दिन मैं गली में पड़ा हुआ लोहे का एक टुकड़ा उठा लाया। माँ ने पूछा—'कहाँ से लाए ?' मैंने उत्तर दिया—'गली में पड़ा था, उठा लाया।' तो माँ ने समझाया—'लोहा काला होता है, इसे उठानेवाले का मुँह काला करवा देता है, इसलिए जहाँ से उठाया वहीं फेंक आओ !' मैं फेंक आया।

माँ ने फिर समझाया—'गिरी वस्तु को उठा लेने से मनुष्य का पतन हो जाता है।' उस समय तो इतनी समझ न थी, परन्तु आज्ञा पालन करने का स्वभाव शैशवकाल से प्रभु ने प्रदान किया था। आज कुछ 'गिरे' शब्द का रहस्य प्रतीत होता है कि मनुष्य का पतन कैसे होता है। तभी तो शास्त्रकारों ने लिखा है—

"मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत् ।" अर्थात् पराई स्त्रियों को माँ-बहन बेटी और पराए धन को मिट्टी के डेले समान जानो।

शील-सन्तोषभरी युक्तियाँ

दरिद्रता में देवत्व—बच्चों को निर्धनता तथा धनवान् होने का क्या ज्ञान ! माँ को अपनी दरिद्रता का भी ज्ञान था। और अच्छे दिन भी देखे थे। धनी-हृदय पति की स्त्री थीं। पुरानी खाँसी के कारण पिता शरद् ऋतु में प्रतिदिन मालपुवे बनवाकर खाता और बच्चों को भी खिलाता था। घर में गाय-भैंस, दूध-घी-मक्खन पुष्कल मात्रा में प्रभुकृपा से वर्तमान थे। जब निर्धनता का समय आया तो हम सब अनाथ हो गए। माँ विधवा हो गईं तो सर्दी के दिनों में हमें बिठाकर कहतीं—'आज मैं तुम्हें बड़े-बड़े मालपुवे बनाकर खिलाऊँगी जो चपाती के बराबर होंगे। ख़ूब तृप्त होकर खाना !' वह गुड़ के पूरे बनाकर हमें खिलातीं, हम बड़े प्रसन्न होते।

कभी दिन की सब्ज़ी नहीं बची और मध्याह्न पश्चात् चार बजे सायं हमने रोटी माँगी तो कहतीं—'आज तुमको नई वस्तु से रोटी खिलाऊँगी।' कटोरी में जल-नमक-मिर्च घोल देतीं और हम डुबो-डुबोकर बड़े मज़े से

खाते; स्वाद भी आता। रोटी पर नमक-मिर्च लगाके लपेट देतीं और कहतीं 'चके-चके (दान्तों से तोड़-तोड़कर) खाओ!' भगवान ने मुझे सरल स्वभाव भोली बुद्धि का बनाया। अब भी याद करता हूँ तो माँ की सादगी, युक्तियों से खिलाने के प्रति कृतज्ञ होता हूँ।

मितव्ययता—घर में निर्धनता थी तो प्रभु ने माता जी को धर्म परायणता के साथ प्रज्ञा बुद्धि भी प्रदान की थी। पड़ोसिन ब्राह्मणी के घर से दो पैसे की सेर रोटियाँ (जो उन्हें हन्दे में मिलती थीं) ले आतीं और समय बचाकर छापा-कली का कार्य करतीं। प्रातः पाँच सेर दाने पीसकर दो पैसे रोज़ प्राप्त कर लेतीं। नानी जी भी चक्की पीसतीं और फिर गोबर लाकर उपले बनातीं; वह हमारा ईंधन होता।

शरद् ऋतु में दोनों सायंकाल तक कपास का बेलन बेलतीं। इस प्रकार भी कुछ मज़दूरी मिल जाती।

बच्चों को बाज़ार की चीज़ खाने को जी करता, माँ से माँगते, परन्तु वह कहाँ से देवे? कभी-कभी एक कसीरा (दमड़ी, पैसे का चौथा भाग) देतीं जिसके चार पकोड़े मिलते। हम एक-एक बाँटकर खाते और हम प्रसन्न व तृप्त होते थे। माँ व नानी जी की भावना पवित्र होती। वे बड़े बच्चों को आशीर्वाद देतीं। हम बच्चों में भी सन्तोष बना रहता, वरना पिता की छत्रछाया बिना बिगड़ना सम्भव होता है।

सहनशीलता की पराकाष्ठा

मेरी बहिन की और मेरी सगाई भी हो गई। अब माँ व नानी को चिन्ता पड़ गई कि लेन-देन की लोक-मर्यादा भी निभानी है, विवाह भी एक दिन करने हैं, हम विधवाएँ हैं। एक दिन माता ने मुझे कहा—'तुम्हें चने का खौंचा बना दूँ, एक घंटा लगेगा, बेच आया करना। बचत में तुम भी बाज़ार से चीज़ लेकर खा सकोगे।' मैं बड़ा ख़ुश हो गया।

माँ ने खजूर के पत्तों से तराज़ू के पलड़े बनाए, ईंट तोड़कर तोलने के बट्टे बना दिये—छटांक, आध पाव के। तोलना भी सिखाया। खौंचे का श्रीगणेश किया, परन्तु 'होका' देना (ग्राहक खींचने को बोलने का तरीक़ा) न आता था। दुकानदारों ने खौंचा देखा तो मुझे बुलाया। तोलने का ढंग न आता था। लोगों ने अधिक ले लिये, हँसते-खाते रहे, मैं जल्दी निवृत्त हो गया। माँ को जाकर पैसे दिये तो माँ ने कहा—'घाटा करके आए हो।' पहला दिन था, चुप रही।

दूसरे दिन दुकानदारों ने फिर वही हाल किया। कई दिन ऐसा नुक़्सान हुआ। माँ ने कहा—'त्रट्टी चौड़ कवीर दी, जाया पुत्त कमाल ! कैसे कमाएगा ? कैसे परिवार को पालेगा ?' माँ रोने लग गई कि अपना पेट काटकर चने लाए और बेरहमों ने ग़रीव भोले बच्चे को लूट लिया। फिर माता जी ने तोलना सिखाया। प्रभु से प्रार्थना की कि मेरे भोले बच्चे को बुद्धि दो ! लोग आराम करते हैं, मैं स्वयं व पुत्र को श्रम कराती हूँ प्रभो ! मेरी लाज रक्खो ! —यह घटना सन् १८९५ की है।

ग़रीब को मत सता वो रो देगा,
सुनेगा मालिक तो जड़ से खो देगा !

उन्हीं मान-प्रतिष्ठावाले सम्पत्तिशालियों के सन् १९१८ में दिवाले निकले। दुकान-मकान सब विक गए और मज़दूरियाँ करने लगे। मेरे पास आभूषण गिरवी रखने को लाए। मुझे वह पुराना दृश्य स्मरण हो आया तो मैंने हाथ जोड़ प्रभु से प्रार्थना की—ऐसे पाप अनर्थ से मनुष्यों को बचावो !

फिर मैं दो-तीन आने रोज़ कमाने लग पड़ा। स्कूल से आता तो माँ खौंचा तैयार कर रखती।

मैं प्राइमरी पास करके जब अंग्रेज़ी मिडल स्कूल अलीपुर में प्रविष्ट हुआ तो हर शनिवार रात को घर आता और रविवार को दो चनों के खौंचे प्रातः-सायं बेचता था। दस मील पैदल चलकर आना, दस मील जाना होता था। माँ पिण्डलियों की खूब तेल-मालिश करती थी। छः मास निरन्तर ऐसे करता रहा।

माँ की सीख—जब माँ व नानी जी रात्रि को कथा सुनने जातीं तो हम बालकों को भी साथ ले जातीं। भाव यह था कि पीछे अकेले भय न करें, आपस में न लड़ें, साथ ही धार्मिक संस्कार भी बनें।

रारते में ब्राह्मणों के घरों में आले में ज्योति जलतो रहती। हम सब माथा टेकते। अब समझ आती है कि देव-मन्दिर, जहाँ ज्ञान की ज्योति जलती रहती है, हमें वहाँ माथा टेकना चाहिए।

अमावस्या के उपरान्त जब चन्द्र-रात आती तो हमें माँ भेजती कि मुहल्ले के सब बुज़ुर्ग स्त्री-पुरुषों के चरण स्पर्श करके राम-राम कह आओ। जब मैं चरण छूता तो सब बड़ी उदारता से आशीर्वाद देते।

खेल-कूद में यदि बच्चे मुझे पीट देते, गाली देते तो मैं रोता घर आता। मेरे चाचा मुझे कहते—'वाह ! गाडी पुत्र होकर रूँ-रूँ करते माँ

के पास आते हो ? जो तुम्हें एक लगाए, उसे दो लगाओ ! वीर बनो !'

माँ सिखाती—'बेटा ! कभी तुमने पीटा, कभी उसने पीटा, यह तो खेल में होता है, परन्तु माँ-वहिन की गाली किसी को न दिया करो ! किसी सहपाठी के घर जाओ और वह कुछ खा रहा हो तो तुरन्त वापस आ जाया करो। खाता देख किसी के पास न ठहरना ! अपने घर में भी कोई आए, तुमको बच्चा जानकर पैसा अथवा कोई अन्य वस्तु दे, तो उसके आगे हाथ मत पसारो ! माता व नानी की आज्ञा विना किसी से कुछ न लो ! माँ के मामा आवें, वह दें तो ले लेना, परन्तु उनसे भी माँगना कभी नहीं !'

माता की शिक्षा का बड़ा प्रताप था। जब मैं वहुत अच्छी कमाई-वाला भी हो गया और कभी मुझे पिछले पहर भूख लगती और मैं घर जाता तो मुहल्ले की देवियाँ गली में चरखे कात रही होतीं। मैं आँखें नीची किये घर के अन्दर चला जाता। थोड़ी देर प्रतीक्षा करता। जब मेरी माँ अथवा स्त्री में से कोई न आता तो मैं वापस चला जाता, परन्तु कोई वस्तु अथवा रोटी अपने-आप न उठाता। कभी उनको मेरे भीतर आने-जाने का भान न भी होता अथवा यह समझकर कि दुकान के कार्यवश आया होगा, भीतर न आतीं। रात्रि को जब पूछतीं और मैं भूख लगने की बात कहता तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप होता। माँ कहती—'तुझे पूछने की क्या ज़रूरत है ?' तो मैं कहता—'माँ ! यदि मैं ऐसी सावधानी न बर्तूं तो बच्चे कैसे सीखेंगे ?'

माता की इस शिक्षा का प्रताप इतना बढ़ा कि जब मैं वानप्रस्थी हो गया, मेरा संसर्ग आम हो गया। टोबा टेकसिंह में आश्रम बना। यज्ञों में बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष आते। मैं स्वयं यही अभ्यास करता व साधकों को समझाता कि जैसे किसी देवी के दर्शन हों तो अपनी त्रिकुटि में अपनी माता के दर्शन हों या उस देवी के मुख में माँ का आकार नज़र आवे, काम-वृत्ति शान्त हो जावेगी।

मेरी माता : धैर्य और सन्तोष का अथाह आगार

मैं अपनी माता की वे नित्यप्रति की बातें लिखता हूँ जिनसे सर्व-साधारण जनता व देवियों को लाभ पहुँचे, जिनपर वे आचरण करें। चार बातें वह नित्यप्रति अपनी वाणी पर लाती थीं—

(क) प्रातःकाल जगते ही भगवान् को नमस्कार करके अपने हाथ की हथेलियों को चूमतीं और परमात्मा से प्रार्थना करतीं कि मेरे हाथों में

बरकत दें, किसी के आगे ये हाथ न पसारूँ !

(ख) दोपहर के समय भोजन सामने रखते हुए विष्णु भगवान् का नाम मन में लेकर हाथ जोड़ नमस्कार करतीं (न जाने मन में क्या कहतीं) । भोजन कर चुकने पर फिर हाथ जोड़कर कहतीं, 'डेंदा पलेंदा जीवे' अर्थात् 'मेरा दाता, पालनकर्ता जीता रहे !'

(ग) रात्रि को सोते समय दो प्रकार के शब्द बोलकर सोतीं—

(i) प्रार्थना रूप में—'भले का भला, बुड़े (बुरे) का भी भला !'

(ii) हक्कों रक्खीं नाहक्कों रक्खीं (हक़-नाहक़ से रक्षा करना)!

(घ) 'नैन-प्राण क़ायम रक्खीं, हलदा-चलदा टोरीं, किसे दा मोहताज न करीं, ज़ुलम-जारी कन्नों बचावीं, हाकिम दी कचहरी कन्नों बचावीं ।' अर्थात् 'मृत्यु-समय तक दृष्टि व श्वास गति ठीक रहे, शरीर में हलचल (शक्ति) रहे, पराधीन न होऊँ, अत्याचार और बुराई से बचाना, न्यायालय में जाने से बचाना !'

माँ का स्वभाव—(१) अपनी सन्तान और अपनी वहुओं का कभी भी किसी के सामने गिला न करती थीं ।

(२) झगड़े, कलह, शोर से बहुत घवरातीं और तुरन्त अपने घर-भीतर चली जातीं । किसी के अधिक बोल देने पर चुप रहतीं । प्रत्युत्तर देकर बात को न बढ़ातीं ।

(३) अपनी बहुओं अथवा पुत्र-पोतों से कभी दुःख या प्रतिकूलता पातीं तो उपेक्षा-वृत्ति कर लेतीं, लेकिन मुँह से कुछ न कहतीं, न शिकायत करतीं ।

(४) जब खाने के लिए गेहूँ लेनी हो तो दो-चार दाने मुँह में डाल-चवाकर नमूना देखतीं । जिस गेहूँ में चीड़ (लसलसाहट) होती वही लेतीं ।

(५) आटे को इतना गूँधतीं-रसातीं कि रोटी नर्म-स्वादिष्ट बनाती और अन्न को बढ़ा देतीं ।

(६) सब्जी-दाल थोड़े घृत में भी बहुत स्वादिष्ट बनातीं; खानेवाला थोड़े घी को भाँप न सकता ।

(७) मेरा लोगों में वड़ा मेलजोल था । फिर ग़रीबी आ जाने पर जब कोई मेहमान मिलने आ जाते तो तत्काल कड़ाही तेल की रखकर बेसन के पकोड़े बनाकर थाली में मेहमानों के सामने ला रखतीं मेरी लाज रखने के लिए ।

(८) कभी अपने बर्तन, मटके, सुन्धड़ा, घड़ों, छाछ की मटकी को खाली न होने देतीं। लस्सी लेनेवाला आता, जितनी देतीं उतना जल और डाल देतीं; याचक कभी निराश न जाता।

(६) रात्रि को सब बर्तनों, वस्तुओं की दैनिक पड़ताल करतीं।

(१०) दिन हो अथवा रात्रि, कभी जूठे बर्तन न रहने देतीं; सदा शुद्ध रखतीं।

यह देवियों के लिए शिक्षाप्रद बातें हैं।

अतीव निर्धनता, उदरपूर्ति की आवश्यकता हो, दिन-रात घर की चारदीवारी में रहकर श्रम-तप करना, यौवन-काल में अपने सदाचार की रक्षा करना, बच्चों के आचार-विचार पर ध्यान रखना, अति प्रेम व रीति से सुलझाना कि मेरे-जैसे भोले-भाले के मस्तिष्क में बैठ जावे। हमारी लाज पूज्य माता व नानी की छत्रछाया में सुरक्षित रही। मैं समझता हूँ कि वह सविता देव मेरी माँ व नानी के गुप्त प्रेरक बने रहे।

मेरी अम्मा अभी गर्भ में थी कि मेरे नाना जी का स्वर्गवास हो गया, परन्तु मेरी नानी एक सती साध्वी, सिंहनी, ईश्वरभक्तिन व सदाचार की मूर्ति बनी रहीं। उनकी छत्रछाया में मेरा उत्थान हुआ। मेरी नानी लगभग ६५ वर्ष की आयु में दिसम्बर १६४२ में गुजरीं।

☐

अध्याय दूसरा

नौकरी और दयानतदारी

पटवार की पढ़ाई उपरान्त गिरदावरी का काम सीखने के लिए श्री हीराचन्द पटवारी के साथ नियुक्त किया गया। गिरदावरी करते-करते एक दिन मध्याह्न को एक कूप पर पहुँचे। कपास बोई हुई थी। कुएँ के लोटे-माल उतरे पड़े थे। शून्य-सी अवस्था थी। सब भूमि वीरान बनी हुई थी। पौधे सब मुरझाए हुए थे। स्थान भी भयावह शून्य और उदासीनतापूर्ण प्रतीत होता था। गिरदावर ने एक पेड़ के नीचे विश्राम के लिए खाट मँगवाई। लाला जी बैठ गए।

कृषक आया—मलिन जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने···दो-तीन छोटे-छोटे शूँ-शूँ करते बच्चे साथ···बहुत निर्धन था। बड़ी नम्रता से करबद्ध कहने लगा—'हाकिम साहिब! मेहरबानी करना। मेरे बनवाड़ (कपास के पौधे) बहुत हुए, परन्तु नहर का पानी न मिलने से सूख गए हैं; ख़राबा लिखना!'

उसकी इस प्रार्थना में इतनी आर्द्रता, नम्रता और आर्त्तता थी कि मेरे भी अश्रुपात हो गए और रोने लग पड़ा।

हाकिम ने कहा—'लाओ रुपैया, ख़राबा लिख दूँगा।'

कृषक बेचारा आजीविका से भी तंग था—अति निर्धन, कहाँ से रुपैया लावे? उसकी सब अनुनय-विनय अकारथ गई और पटवारी साहिब के दिल को स्पर्श न कर सकी। खराबा लिखने से कृषक का आबियाना (जलकर) ठेका (राजस्व-कर) माफ़ हो जाता। एक परमेश्वर का कोप कि फ़सल ही सूख गई, दूसरा सिंचाई-कर, तीसरी निर्धनता, चौथे पटवारी साहिब का अन्याय कि बिना रुपये के ख़राबा लिखते नहीं। इस सारी घटना का प्रभाव मेरे मन पर इतना पड़ा कि मैंने दूसरी प्रतिज्ञा कर ली। पहली तो मिडिल में की थी कि असत्य नहीं बोलना, और अब धारणा कर ली—या पटवार नहीं करूँगा अथवा घूँस नहीं लूँगा! सबका कार्य निःशुल्क कर्तव्य समझकर ही करूँगा!

पटवारी साहिब ने खाट पर विश्राम किया और कृषक भूमि पर सो

गया। लेखन-कार्य के पश्चात् सायं को घर पहुँचे। मेरा मन ऐसी घटनाओं और पटवारी के व्यवहार से बैठता जाता, परन्तु काम की समझ शीघ्र आने लगी।

पटवार का काम सीखने के बाद कभी नौकरी न मिली। श्री पूज्य पं० गंगाराम जी के कहने पर बोधाराम ठेकेदार के पास मुंशी लगा। पहले एक मुंशी निरंजनदास काम करता था। यह नहर का काम 'लैय्या' के पास चल रहा था। बोधाराम मुझे वहाँ ले गया।

दिनभर श्रमी लोग काम करते रहे। प्रत्येक श्रमी के काम की पैमायश लिखी जाती थी। सबके काम की माप तो निरंजनदास ने की थी। वह एक-एक की पैमाइश बताता और बोधाराम मुझसे पूछता—'कहो मुंशी जी, कितने घनफुट हुए हैं?' मैं झट बता देता। निरंजनदास ने मज़दूरी कम लिखी होती। श्रमी चिल्लाते। इस ग़लत गणना में मालिक (ठेकेदार) का भी हाथ था, क्योंकि इस विधि से श्रमी को श्रमफल कम मिलता। बचत ठेकेदार के घर जाती। श्रमिकों के कहने पर कि छोटा मुंशी ठीक कहता है, बोधाराम मान जाता।

रात्रि को जब डेरा पर गए तो बोधाराम ने कहा—'मुंशी जी! काम भली प्रकार सीख लो!' दो दिन बीते। श्रमियों को तो पूरी-पूरी मेहनत मिली, पर ठेकेदार को कुछ न बचे। निरंजनदास भी लज्जित हो गाए कि श्रमी क्या कहते होंगे! मालिक की तरफ़ से उसे सन्तोष था कि वह जो कुछ करता है ठीक है।

तीसरे दिन मुझे बोधाराम ने कहा—'कहो मुंशी, सब ठीक काम चला लोगे न? हम निरंजन को मुक्त कर दें?'

मैंने कहा'—हाँ।'

बोधाराम—'कैसे सँभालोगे? जैसे अब पैमाइश बोलते हो या निरंजनदास का अनुकरण करोगे?'

मैंने बताया—'जैसे अब बोलता हूँ। निरंजनदास ग़रीबों को हानि पहुँचाता है, मैं क्यों हानि पहुँचाऊँ?'

बोधाराम—'करना तो ऐसा ही पड़ेगा। हम कहां से खाएँ? मुंशियों और नौकरों का वेतन, मकान आदि के क़िराए, ओवरसियर आदि को घूंस कहाँ से दें? ये लोग तम्बाकू तक के लिए पैसा माँगते हैं।

मैंने साफ़ बता दिया—'मेरी तो प्रतिज्ञा है कि असत्य नहीं बोलूंगा, अतः मैं असत्य नहीं कह सकता।'

बोधाराम—'फिर तुम्हारी नौकरी की हमें आवश्यकता नहीं।'

मैं बोला—'तीन दिन का वेतन मुझे दे दीजिये, मैं कल प्रातः वापस चला जाऊँगा।'

बोधाराम यह सुनकर क्रोध में आ गया। रात को डेरा पर बहुत व्यक्ति थे। निरंजनदास को कहा—'इसे समझाओ, यह तुम्हारी तरह काम करें!'

निरंजनदास मेरा कुछ जानकार था। उसने मुझे कहा—'भाई, यहाँ तो ऐसे ही गुज़ारा चल सकेगा। नौकरी करनी है या नहीं करनी?'

मैं उदास भाव से बोला—'मुझे ऐसी नौकरी नहीं करनी। मैं पटवार से भी बेज़ार हो आया हूँ, वहाँ भी वही स्थिति है। मुझे तीन दिन का वेतन दे दो, मैं कल वापस चला जाऊँगा।'

बोधाराम ने क्रोध में कहा—'इसकी चादर उतार लो! तब पता लगेगा कि सर्दी में कैसे गुज़ारता है। हम इसका किराया ख़र्च कर आए हैं और इसकी चादर से किराया वसूल करेंगे। हम न वेतन देते हैं, न किराया वापस जाने का।'

उस समय मेरे पास एक पैसा भी नहीं था। बालकपन था; अनुभव न था। परेशान हो गया, जब चादर उतार ली। 'लैय्या' मुज़फ़्फ़रगढ़ से ७० मील था···स्तब्ध रह गया। अन्ततः निरंजनदास ने कहा—'बाबू जी! यदि वेतन नहीं देते तो चादर तो बेचारे को वापस कर दो!'

चुनाचि चादर मिल गई।

मैंने निरंजन से कहा—'किराए के पैसे दे दो, मैं पहुँचते ही मनीआर्डर कर दूँगा।' पहले तो वह हिचकिचाया, अन्ततः एक रुपया दे दिया। उसका विचार था कि टेकचन्द के चले जाने पर उसकी सर्विस निश्चित ही है।

तेरह आने किराया रेल लगता था। मैं लैय्या पहुँचा। दो पैसे के छोले लेकर खाए, पानी पिया, स्टेशन पर पहुँचा, वहाँ से फिर मुज़फ़्फ़रगढ़ जाकर दम लिया।

श्री केशोदास ठक्कर के मकान पर पहुँचकर नमस्ते की और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। लाला केशोदास ने कहा—'वाह रे भोले! तू कैसे नौकरी करेगा और कैसे कमाएगा?'

वकील का मुंशी

जाड़े के दिन थे। शनिवार सायं को लाला वज़ीरचन्द बी० ए० वकील आए—विशाल और बलिष्ठकाय, युवा। ठक्कर साहिब ने वकील

साहिब को देखकर कहा—'यह लड़का अंग्रेज़ी मिडल और पटवार भी पास है।'

उन्होंने कहा—'बहुत अच्छा, तो आज ही मेरे साथ चल पड़ें।'

ठक्कर साहिब ने मुझे कहा—'इनके साथ जाओ, आपको वकील साहिब का मुंशी बना दिया है।'

मैं खड़ा हो गया और साथ हो लिया। वकील साहिब एक अभियोग की पैरवी में जतोई जा रहे थे।

वकील साहिब से वार्तालाप

मैंने पूछा—'आप मुंशी क्यों रखते हैं? मुंशी का क्या काम होता है?'

वकील ने बताया—'कोई लम्बा काम नहीं होता। न्यायालय के समय से पूर्व अभियुक्तों के काग़ज़ात, बस्ता, लिफ़ाफ़े न्यायालय ले चलना और आवश्यकताअनुसार प्रत्येक अभियुक्त के काग़ज़ वकील साहिब को देना और उस अभियोग से निवृत्त हो जाने पर काग़ज़ सँभाल रखने, न्यायालय के बन्द होने पर वे सब काग़ज़ात वकील साहिब के कार्यालय में पहुँचा देने।'

मैंने कहा—'इतना साधारण काम तो दो रुपये मासिक वेतन लेने-वाला आपका घरेलू भृत्य भी कर सकता है, फिर मुंशी को वेतन देने की क्या ज़रूरत है?'

वकील साहिब बोले—'केवल रुपया बचाना ही मनुष्य का काम नहीं, कुछ स्थिति का भी ख़याल रखना होता है। हम बी० ए० हैं। न्यायाधीश हमसे कम पढ़े होते हैं। उनको राज्य की ओर से मुंशी मिलते हैं। वह भी कुर्सी पर बैठते हैं, हम भी कुर्सी पर बैठते हैं। कुर्सी पर बैठनेवाले को अपनी स्थिति अनुसार ही कोई व्यक्ति काग़ज़ात भेंट करनेवाला चाहिए, नहीं तो हमारी मान-मर्यादा में कमी आ जाती है। इसलिए हम मुंशी को अपनी मान-प्रतिष्ठा रखने के लिए वेतन देते हैं!'

मैं अब आगे क्या प्रश्न कर सकता था! साथ हो लिया मन-ही-मन में विचारने लगा कि अब जब काम सामने आएगा तो पता लगेगा।

नगर के बाहर अभियुक्त की तरफ़ से वकील साहिब के लिए घोड़ी खड़ी थी। वकील साहिब घोड़ी पर सवार हो गए, अभियुक्त और मुंशी, दोनों पैदल वकील साहिब के आगे-आगे चले। सवाएवाला पहुँच गए। जाड़े के दिन थे। रात्रि हो गई। चौधरी बिहारीराम सेतिया नम्बरदार

के घर पहले ही स्थान बना रक्खा था, वहाँ सब उतर पड़े।

वकील साहिब ने पूछा—'ग्राप लोगों के साक्षी सब ग्रा गए ?'

उत्तर मिला—'जी हाँ।'

वकील साहिब ने कहा—'सबको बुला लो !...मुंशी जी पैदल ग्राया है, थका हुग्रा है, इन्हें तो सोने का स्थान बना दो !'

मुझको दूसरे कमरे में सुला दिया। मैं तो वकील साहिब की सब कार्यवाही को देखना-सुनना चाहता था, इसलिए ग्राँखें मींचकर लेट गया ग्रौर कान लगाकर हर एक बात को सुनने लगा। कभी-कभी देख भी लेता। वकील साहिब प्रत्येक साक्षी को ग्रलग-ग्रलग बुलाकर बयान सिखाते, दोहरवाते, तब विदा करते। फ़ौजदारी ग्रभियोग था। मजिस्ट्रेट के पेश होना था। इस क्रिया में रात्रि का तीसरा पहर हो गया। ग्रब सब सो गए, वकील साहिब भी सो गए।

प्रातः जागे तो तैयारी की। ग्रदालत तो जतोई में थी जो वहाँ से ढाई मील दूर थी। उन सब लोगों को भोजन करके ग्राना था। मैं ग्रौर वकील साहिब चल पड़े। वकील साहिब ने कहा—'तब तक वास्तविक मिसल का निरीक्षण करूँगा।'

थाना पर पहुँचे तो पता चला कि तहसीलदार साहिब शहर सुलतान चले गए हैं जो कि वहाँ से १२ मील दूर था ग्रौर वहाँ ही ग्रदालत का क़याम था। वकील साहिब ने सोचा कि मुंशी बेचारा तो पैदल न चल सकेगा, घबरा जाएगा, इसलिए मुझे कहा—'ग्राप ग्रलीपुर वापस जाएँ ग्रौर ये मेरे गीले वस्त्र-धोती ग्रादि मेरे घर पहुँचा देना ग्रौर कहना कि वकील साहिब रात्रि को घर ग्रावेंगे।'

मेरा घर थाना से एक-डेढ़ फर्लांग पर ही था। मेरे मन में लज्जा ग्राई कि घर जाऊँ तो माता-नानी क्या कहेंगी कि ऐसा निकम्मा निखट्टू पुत्र मिला है कि इसका मन ही कहीं नहीं लगता ! हम ही इसके लिए ग्रौर इसकी पत्नी के लिए चक्की चलाती रहें ? ग्रभी तो प्रभुकृपा से देवी बेचारी बड़ी सरल ग्रौर शान्त स्वभाव, कभी उसने एक वस्त्र तक नहीं माँगा, माता-नानी के साथ वह भी चक्की चलाती है।

यह सोचकर मैं सीधा ग्रलीपुर वापस हो लिया ग्रौर दोपहर को वकील साहिब के घर धोती ग्रादि देकर ठक्कर साहिब की दुकान पर जा चरण स्पर्श किये। सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा—'गुरु जी ! यहाँ भी मेरी बस है। रात्रि को सारा ग्रभिनय देखता रहा ग्रौर मैं समझ गया मुंशी को क्यों रखते हैं। इतना झूठ का तूफ़ान सिखाना—यह सब मुंशी का काम है।

मेरी इस व्यवसाय से तौबः है। अब आप मुझे सीना सिखावें तो ठीक, नहीं तो मेरा पथ-प्रदर्शन करें।'

ठक्कर साहिब ने समझा-बुझाकर मुझे सरकारी नौकरी करने पर तैयार कर लिया।

मैंने समझा कि जब किसी भी व्यवसाय में मन नहीं लगता तो नौकरी ही अच्छी। अब भाग्य पर ही छोड़ना चाहिए। लाला टाकणलाल गिरदावर के पास गया तो उन्होंने कहा—'आ जाओ, जब कोई स्थान रिक्त होगा, लगवा देंगे।'

भाग्यवश सर्वप्रथम मुर्हरिर डाक का पद छः रुपये मासिक वेतनवाला १०-१५ दिनों के लिए ख़ाली हो गया। अब मुझे वहाँ लगा दिया।

मुर्हरिर डाक के साथ प्रायः सभी कार्यालयों तथा तहसीलदार आदि का सम्बन्ध रहता है। जो डाक आवे-जावे, मुर्हरिर साहिब रजिस्टर में चढ़ावे। सिविल नाज़र के भेजे वारण्ट-कुर्की आदि भी मुर्हरिर के पास आएँ। मुर्हरिर को वालाई आमदनी (घूंस आदि से) भी होती थी, परन्तु मुझे ऐसी आमदनी से कोई वास्ता न था। मैं तो चक्की पीसना जानता था। १०-१५ दिन तो मैं लाला टेकचन्द के नाम से सम्बोधित होता रहा और कुछ मान भी था। १०-१५ दिनों के बाद चार्ज वापस सँभाल देना पड़ा।

आर्यसमाजियों में उन दिनों बड़ा प्रेम-प्यार था। लाला जस्सूराम वैद्य भी थे और भद्र पुरुष आर्यसमाजी थे। एक दिन मैंने कहा—'हकीम साहिब, मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा विवाह न होता तो अच्छा था। धर्म के कार्य में लगकर प्रचार करता। अब मैं प्रतिदिन परमेश्वर से विनय करता हूँ कि भगवान् तुम ऐसी कृपा करो कि मेरी स्त्री मर जावे, ताकि मैं स्वतन्त्र रहकर प्रचार-कार्य कर सकूँ।'

हकीम साहिब ने कहा—'यह निकृष्ट प्रार्थना है। ऐसी प्रार्थना कभी मत किया करो! यदि प्रार्थना स्वीकार हो जाय और आपकी स्त्री मर जाय और धर्म-कार्य न कर सको, यदि करो भी और काम-वासना उत्तेजित हो तो क्या करोगे? व्यभिचारी बन जाओगे। अतः आज से प्रतिज्ञा करो कि ऐसी प्रार्थना नहीं करूँगा। परमेश्वर चाहे तो अब भी आपको धर्म-कार्य में लगा सकता है।'

मैंने तब से प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसी प्रार्थना नहीं करूँगा।

गिरदावरी के दिन थे। एक फ़सली मौज़ा था। गिरदाबरी पर कौड़ाराम मेरे साथ होता। जहाँ जिस कुएँ पर रात पड़ जाती, डेरा लगा देते। एक दिन गिरदावरी करते-करते कौड़ाराम के मित्र ग़ाज़ी खाँ के डेरे पर सायं को जा पहुँचे। उन्होंने कौड़ाराम की मित्रता के नाते ख़ूब सत्कार किया। मैं हैरान हो गया और ग़ाज़ी ख़ाँ से वृत्तान्त पूछा, तब उसने अपनी आत्मकथा सुनाई—

"मैं कौड़ाराम का बड़ा ऋणी हूँ। यह बड़ा धनाढ्य था। मुझे पिता ने घर से निकाल दिया और सारी सम्पत्ति-भूमि मेरे भाइयों को दे दी। मैंने प्रभु पर विश्वास रक्खा। इस कौड़ाराम की घोड़ी के आगे-आगे दौड़ता था। इसने मुझे अपना सेवक वना लिया। फिर मैं ग्राम में गौएँ चराने लगा। वह टीला, जहाँ से आप आए हैं, एक दिन इसपर बैठकर प्रभु-दर-वार में व्याकुल होकर प्रार्थना कर रहा था और अपने भाग्य पर रो भी रहा था। मेरा पिता एक बड़ा ज़मींदार था। सब भूमि मेरे भाइयों को दे गया और वे मौज उड़ा रहे थे, जवकि मैं रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए मोहताज था। रोते-रोते सोटे (डंडे) को पृथिवी पर मारता था, विना किसी ज्ञान के। यहाँ तक कि मेरे अश्रुओं से गड्डा भर गया जो उस सोटे के आघात से वन गया था। उस गड्ढे में एक पात्र दीखा। क्या देखता हूँ कि वह पात्र धन-दौलत से भरपूर है। ख़ुदा का धन्यवाद किया और मिट्टी से उसे दबा दिया, निशान लगा दिया, गौएँ ग्राम में पहुँचा दीं। बाद में वहाँ जाकर गढ़ा खोदा तो बहुत-सा धन हाथ आया। यह सारी भूमि और महल-माड़ियाँ उसी धन की उपज हैं। आज मेरे भाई दाने-दाने को तरस रहे हैं।"

तहसीलदार सदारंग के अर्दली ने घोड़े के लिए घास माँगी तो मैंने इन्कार कर दिया। तहसीलदार नाराज़ हो गया।

पहले पटवारी जगन्नाथ ने भक्त राघुराम धनी के नाम इन्तकाल न चढ़ाया तो मैंने सही रिपोर्ट देकर भक्त का काम सँवार दिया। भूमि उसके नाम करवा दी।

शेख़ मुहम्मद मुनीर अफ़सर-माल दौरे पर अलीपुर आए और सब अधिकारी छोटे-वड़े मिलने को गए। मौलवी ग़ौसवख्श ऑनरेरी मजिस्ट्रेट एकान्त में मिले। हँसते-हँसते अफसर-माल से कहा—'वाह शेख़ साहिब ! अच्छा पटवारी हमें दिया कि हमारी भी परवाह नहीं करता !'

अफ़सर-माल वहुत पुराने अनुभवी थे, सब रहस्य आदि को समझते थे। फ़रमाया—'मौलवी साहिब ! इतने वड़े आदमी होकर एक साधारण पटवारी की शिकायत करते हैं ? आपकी आज्ञा न माने तो इसका यह अर्थ

हुआ कि आप अपने अधिकार के बल पर पटवारी को कुछ नहीं दिया करते। पटवारी क्या लगे जो आपकी आज्ञा न माने ! परन्तु आप पटवारी को मामूली फ़सलाना भी न देते होंगे। पटवारी ने आप-जैसे आदमी से स्वयं तो न माँगना हुआ !'

मौलवी साहिब ने कहा—'परमात्मा की सौगन्ध, मैं तो सदा पटवारियों को ख़ुश रखता हूँ, परन्तु यह पटवारी तो पानी तक भी नहीं लेता, इसे क्या दूँ ?'

शेख़ साहिब ने जब यह सुना तो कहा—'मौलवी साहिब ! फिर आप अनुचित माँग पूरी कराना चाहते होंगे। दयानतदार धर्मात्मा आदमी कब पूरी कर सकता है ! वैसे···ऐसा कौन पटवारी है ?'

मौलवी ने कहा—'टेकचन्द नामी हिन्दु नवयुवक है।'

दोनों चुप हो गए।

शेख़ मुहम्मद मुनीर साहिब मुज़फ़्फ़रगढ़ वापस चले गए। थोड़े ही दिनों में एक स्थायी पटवारी का स्थान रिक्त हुआ। सम्भवतः घलवाँ के पटवारी की जगह ख़ाली थी। धलवाँ भी अलीपुर का एक बड़ा भारी मौज़ा (ग्राम) था और दो पटवारी वहाँ नियुक्त थे। सुलतानपुर के पटवारी दीवान हेमराज की तब्दीली घलवाँ और मुझे स्थायी पटवारी सुलतानपुर रक्खा गया।

ठक्कर तुलाराम ने म्यूनिसिपैलिटी की ज़मीन अधिकार में कर ली। रिपोर्ट हुई। मुझे बहुत कहा कि रिपोर्ट मेरे हक़ में कर दो, परन्तु मैं नहीं माना। किसी को प्रसन्न करने के लिए मैंने अपनी प्रतिज्ञा का त्याग, आत्म-हनन न किया।

एक दिन चपरासी-तहसील आया और वह उसी मकान पर ठहरा। उसके लिए जहाँ से भोजन आया, उसमें मांस था ! ज्यों ही थाली से कपड़ा उतारा तो मुझे दुर्गन्ध आई। पूछने पर रोटी लानेवाले ने कहा कि मांस है। मैंने चपरासी से कहा—'यहाँ मत खाइये, किसी दूसरी जगह जाकर खाओ !'

चपरासी—'और कहाँ जाकर खाऊँ ?'

मैं बोला—'जहाँ इच्छा हो। कुछ हों, मैं तो अपने मकान में अभक्ष्य पदार्थ आने नहीं दूँगा। आप प्रसन्न हो अथवा रुष्ट।'

दूसरों ने भी मिलकर कहा—'महाशय जी ! अन्न देवता आगे रक्खा

है, इसका निरादर न करें ! और कहाँ जाकर खावें ?' चपरासी पुराना था, मद्य भी पी हुई थी, हठ किया। मैंने बलात् निकाल दिया। इससे दूसरे मांस खानेवालों के कान खड़े हो गए।

मास्टर पुरषोत्तमराम जी के छात्र मेरी रोटी पकाते-खिलाते थे। उनका ऋण चुकाने के लिए मैं रोज़ बच्चों को पढ़ाया करता था।

मुंशी मिलापचन्द के पुत्र जेठानन्द ने महर्षि दयानन्द जी की भर्त्सना की, मुझे चिढ़ाने के लिए। मिलापचन्द डरा कि पटवारी बदला न ले, परन्तु मैंने जेठानन्द को प्यार से उर्दू पढ़ाया।

लाला जोधाराम को मैंने अपने मकान पर मांस न खाने दिया, बल्कि उससे हुक्का भी अलग कर लिया। जोधाराम को अपने ऊपर घृणा हुई। उसने प्रतिज्ञा की और मांस छोड़ दिया। आगे चलकर श्री जोधाराम ने घूँस लेनी भी बन्द कर दी। काफ़ी प्रशंसा हुई। फिर मैं उसके साथ एक थाली में भोजन भी करता; हुक्का भी इकट्ठे पीते।

सुलतानपुर में मैं दो वर्ष रहा। इन दो वर्षों में मैंने जनसाधारण और कृषकवर्ग का यथोचित उपकार किया। मेरे बिना गौशाला का कोई अधिवेशन सम्भव न होता। बिरादरी में, दुःख-सुख में अविभाज्य और अत्यावश्यक अंग बन गया। किसी भी व्यक्ति का कोई मुक़द्दमा अदालत में नहीं गया। सीमांकन का कोई आवेदनपत्र न्यायालय में देने की किसी को आवश्यकता न पड़ी। जब भी कोई झगड़ा होता, अथवा भूमि-सम्बन्धी कोई प्रश्न उठता तो दोनों पक्ष मेरे पास आकर अपनी फ़रियाद करते। मैं नीति से, युक्ति से इस तरह समझाता कि दोनों पक्ष पारस्परिक छाती से आलिंगन करते हँसते-हँसते घर जाते।

तप, त्याग, तपस्या का जीवन

१५ वर्ष पर्यन्त मेरी माँ व नानी ने चक्की पीसकर परिवार का गुज़ारा किया। मेरी धर्मपत्नी भी उनके साथ चक्की पीसती थी। कभी किसी के सन्मुख या मायके में शिकायत नहीं की। १९०६ में मैं परिवार को सुलतानपुर लाया। दस रुपये वेतन था, चार व्यक्ति खानेवाले; किराया-मकान एक रुपया, यज्ञ एक रुपया, दान एक रुपया, भोजन इत्यादि सात रुपये कुल १० रुपये। जतोई में भक्त हीरानन्द जी से प्रतिज्ञा की थी कि पक्की नौकरी लगेगी तो हवन प्रतिदिन करूँगा। उस प्रतिज्ञा का पालन आरम्भ हो गया। पौने दो रुपये पर एक व्यक्ति का महीनाभर भोजन चले,

कठिन समस्या थी। देवियों ने सहयोग दिया। एक नवीन तप का जीवन था। मज़दूरी भी छुड़वा दी थी। फिर भी किसी ने तंगी की शिकायत न की। माँ और नानी जी तो आशीर्वाद देती थीं कि 'धर्म की पूरी निभी।'

नौकरी से पूर्व का जीवन निर्धनता व अनाथपने का जीवन था; मजबूरी का जीवन था। वस्तुतः तप अब आरम्भ हुआ कि सात रुपये में चार व्यक्ति गुज़ारा करें, मान-मर्यादा, अतिथि-सत्कार भी हो। दो वर्षों में एक कपड़ा भी नया न ले सके। केवल एक पाजामा, एक कुर्ता, एक पगड़ी, एक अंगोछा मेरे पास थे। रविवार को अंगोछा बाँधकर बैठता और कपड़े धुलते थे। सब ऐसे ही गुज़र करते।

हम ज़मींदारों के मुहल्ले में रहते थे। माता जी को कह रक्खा था कि किसी के घर से साग-सब्ज़ी न स्वीकारें; भाईचारे में यदि कोई दे जावे तो मुझे बिल्कुल न खिलाना! सीतपुर से कभी-कभी बाज़ार में सब्ज़ी आती थी। पैसे-अधेले की लेते और कई दिन चलाते थे। प्रायः प्याज़ का अचार, लस्सी, बाजरा के ढोढे बनते। गेहूँ की रोटी रात को या मेहमान आने पर बनती थी। छोले (चने), बेसन, उड़द की दाल हमेशा घर में रहते।

एक ही जूता था। जब बाहर जाता तो पहनता, घर में नंगे पाँव या खड़ाऊँ का प्रयोग करता। तीनों देवियों के पास एक ही जूती थी। अली-वली मोची को देवियों के लिए जूती बना देने को कहा। उससे दाम पूछे, उसने दाम लेने से इन्कार किया, मैंने जूती न बनवाई।

बहनोई जी ने एक गाय भेजी। उससे घर का सारा गुज़ारा चलता। चारा-भूसा मोल से लेकर खिलाते।

गिरदावरी के दिनों में घर से रोटी खाकर जाता, फिर रात्रि को घर आकर भोजन करता। प्यास लगती तो ज़मींदार से पूछता—'कुएँ का पानी मीठा है?' कृषक कहता—'मीठा है, पीकर देखो! मैं कुआँ चलाता हूँ।' इस तरह पानी भी पूछकर पीता।

[तप द्वारा ही सोना कुन्दन बनता है। बिना तप के त्याग निभ नहीं सकता; इनका अटूट सम्बन्ध है। —सम्पादक]

दयानतदारी के भी अलग-अलग माप हैं। आदमी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए क्या-क्या चाल नहीं चलता! यहाँ एक दृष्टान्त देता हूँ।

पं० हरिचन्द गिरदावर का मुख्य कार्यालय सीतपुर में था। गिर-दावरी के दिनों ग्रामों में हो आते, परन्तु पटवारियों के काग़ज़ात सीतपुर

में देखते; इन्तकाल पुष्टि करते। पटवारी एक रुपया अपने लिए और एक रुपया गिरदावर के लिए लेते। गिरदावर हिसाब करके अपना हिस्सा लेता, फिर इन्तकाल स्वीकृति के लिए अधिकारी के सामने पेश करता। बड़े ज़मींदारों से फ़सलाना भी लेते थे।

एक दिन पं० हरिचन्द जी गिरदावरी करते घोड़े पर सवार मेरे साथ आ रहे थे, कहने लगे—'गिरदावर! मैं क्षौर (हजामत) बहुत दिनों बाद कराता हूँ, कारण क्षौर के बाद सन्ध्या-तर्पण-गायत्री निषिद्ध है (गिरदावर साहिब पौराणिक थे)।'

मैंने कहा—'सुना है आप पहले बड़े दयानतदार थे, अब फ़सलाना भी लेते हैं?'

गिरदावर—'मैं प्रसिद्ध दयानतदार था। नायब तहसीलदारी के लिए मेरा नाम भेजा गया था, परन्तु अपनी बुद्धिमत्ता से अपना हक़ निकाल लेता था! नक़द न लेता, अनाज की बोरियाँ मँगवा लेता, घी ले लेता था। अब नक़द लेता हूँ।'

मैंने रजिस्टर दाख़िल ख़ारिज की पुष्टि के लिए पेश किया तो उन्होंने कहा—'मेरे रुपये?'

मैं बोला—'मैं आपके रुपये कैसे लेता? आप अपने-आप भले ही लेवें।'

गिरदावर—'अरे अपने लिए पाप था, मेरे लिए तुम्हें क्या पाप था? मैं अब सम्बन्धित ज़मींदारों को कैसे बुलाऊँ? अच्छा, तस्दीक़ नहीं करता। जब दे देवेंगे, तब करूँगा।'

मैंने कहा—'जैसी आपकी इच्छा। परन्तु आप मेरे मौज़ा से आशा न रक्खें।'

गिरदावर को ये शब्द बुरे लगे; मन में रखकर चले गए।

[**यह है वर्तमान समय की दयानतदारी! —सम्पादक**]

शैख मुहमद रमज़ान पटवारी कामचोर, कर्त्तव्य-पालन में अति शिथिल था। अब्दुर्रहीम साहिब तहसीलदार तब्दील होकर आए। धर्मात्मा, ईश्वरभक्त, परन्तु घोर पक्षपाती था। शैख़ मुहमद रमज़ान की मिसलें तहसीलदार के सामने पेश की गईं तो तहसीलदार ने कहा—'ये पटवारी बड़े दुष्ट, निकृष्टतम अधर्मात्मा होते हैं।'

मुहमद रमज़ान—'हुज़ूरवाला! आपके मुख से ये शब्द शोभा नहीं देते। पटवारी न सब दुष्ट, न सब अधर्मात्मा होते हैं।'

तहसीलदार—'कौन कहता है ? बेईमान ही नहीं, घूंस-भुज लोगों को लूटनेवाले भी !'

मुहम्मद रमज़ान—'नहीं श्रीमान, नहीं ! मैं भी कहता हूँ, सारी तहसील भी यही कहेगी। ऐसे पटवारी भी विद्यमान हैं जो किसी के कुएँ का जल तक नहीं पीते।'

तहसीलदार—'किस जगह ?'

मुहम्मद रमज़ान—'श्रीमान जी की छत्रछाया में···आपकी ही तहसील में।'

तहसीलदार—'मेरी तहसील में ? कौन ऐसा पटवारी है ? कहाँ है ?'

मुहम्मद रमज़ान—'सीतपुर गिरदावर के आधीन टेकचन्द पटवारी सुलतानपुर का सख्त दयानतदार, सत्यवक्ता, सत्यकर्ता है।'

तहसीलदार (दफ़्तर कानूँगो की ओर मुख करके)—'क्यों भई ?'

कानूँगो—'हाँ श्रीमान ! टेकचन्द पटवारी बहुत प्रसिद्ध है···धर्मात्मा, सत्यवादी, व्यवहार-कुशल है।'

तहसीलदार—'अच्छा गिरदावर, सीतपुर के नाम आज्ञापत्र लिखो कि हम अमुक तिथि को सीतपुर आवेंगे, सुलतानपुर का पटवारी हमारे सामने पेश हो। (ऐसे पटवारी के दर्शन करना चाहता हूँ कि दस रुपये का पटवारी और फिर दयानतदार ?)' फिर शेख मुहम्मद रमज़ान को भी वापस कर दिया।

मुझे आदेश मिला तो नियत तिथि को बस्ता सिर पर रखकर सीतपुर को चल दिया। तहसीलदार एक दिन पूर्व ही सीतपुर पहुँच गए थे। वह कानूँगो को आदेश दे चुके थे कि सुलतानपुर का पटवारी आवे तो उसी समय मेरे पास लावें।

कानूँगो हैरान कि नया तहसीलदार तो कड़ा हाकिम है ! भय से कुछ कह न सका।

जब मैं पहुँचा तो मार्ग थाना के आगे से गुजरता था। थाना और राजकीय विश्रामगृह के बीच में खुले मैदान में तहसीलदार कचहरी लगाए बैठा था। लोग बड़ी संख्या में उपस्थित थे। गिरदावर ने मुझे देखा। उसको अपनी चिन्ता लगी हुई थी कि 'इन्तकाल की पुष्टि नहीं की थी; अब पेश होगा तो न मालूम क्या कह देगा ! क्यों न अब शीघ्र कर दूं !' उधर आज्ञा थी कि जब पटवारी आए तो मेरे पास लाओ ! गिरदावर बड़ी दुविधा में पड़ गया। अन्ततः सोचा कि पेश ही कर दूं; पता तो चले क्या

वात होती है ! आसामियाँ आने में भी देर है, सारे तो आए नहीं ।

मैं पहुँचा, कानूँगो के चरण स्पर्श किये। मेरे साथ आकर उसने तहसीलदार से निवेदन किया—'श्रीमान जी ! सुलतानपुर का पटवारी उपस्थित है।'

तहसीलदार साहिव ने ज्यों ही सुना, तुरन्त कुर्सी से उठ खड़े हुए, आदर से नमस्कार की।

तहसीलदार—'मैं आपके दर्शन के लिए आया हूँ। न सीतपुर मेरा मण्डल है, न मेरा कोई और काम था। जब से तुम्हारा नाम सुना कि टेकचन्द अति दयानतदार पटवारी है, तब से मैं हैरान भी हुआ और मेरे मन में दर्शनों की उमंग उठी।'

सारी जनता ने ये शब्द सुने और प्रशंसा की कि कितना क़द्रशनास अफ़सर है !

तहसीलदार—'अच्छा टेकचन्द, अब विश्राम करो ! जब समय आवे, इन्तकाल पेश कर देना।'

मैं वाहर आ गया। गिरदावर को अवसर मिल गया तो उसने सब इन्तकाल तस्दीक़ कर दिये। सायंकाल मिस्लें दिखाकर मैं घर वापस आ गया।

दयानतदार की उपेक्षा—पं० हरिचन्द कानूँगो को सारे इलाक़े से बहुत-कुछ मिलता था, परन्तु सुलतानपुर से कुछ न मिलता। बदला तो लेना था ! चारपाई पर पड़ा रहता, पटवारियों को कहता—'एक दूसरे-का काम पड़ताल कर लो, त्रुटि न निकालनी !' मुँहमाँगी घूँस लेता; लोग ख़ुशी से देते थे।

गर्मी हो या सर्दी, मैं प्रायः हवन करके, घर से रोटी खाकर जाता और सायं को वापस घर आकर खाता। दिनभर चपरासी औरों से जल-हुक्का पूछता, परन्तु मुझे छोड़ देता। मैं धर्मशाला में कुएँ से पानी पी आता। एक दिन मुझे सीतपुर में ज्वर आ गया। प्यास लगी, मगर किसी ने पानी तक न पूछा। दुकानदार ने भी कहा पानी नहीं है। घर तक प्यासा आया।

कानूँगो का कार्यालय तंग था। अन्य पटवारी अपने काग़ज़ फैलाकर बैठते; मुझे बाहर जूतियों के पास बैठना पड़ता। गिरदावर ने कभी ख़याल न किया कि टेकचन्द भी सरकारी कर्मचारी है।

यह वह नशा न था जिसे तुर्शी उतार दे !

मैंने सुलतानपुर में नित्य हवन आरम्भ कर दिया। माता व नानी

जी सुखमणि का पाठ करती थीं और मुहल्ले में एक ग्रन्थ साहिब रक्खा हुआ था, वहाँ माथा टेक आती थीं।

मेरी धर्मपत्नी अनपढ़ थी, परन्तु प्रतिदिन सन्ध्या-हवन में साथ बैठती। उसे सब मन्त्र याद हो गए थे; गायत्री जप भी करती थी। जून १९०७ में मेरे घर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसकी जीभ पर मधु से ओ३म् उर्दू में लिखा; कान में गायत्री पढ़ता रहा। नाम उसका गणपतराय रक्खा। शैशवकाल में रोता बहुत था। मुख्यानी ने नानी को कहा—थोड़ी अफ़ीम घिसकर पिला दिया करो! गणपति को पेट की तकलीफ़ भी रहती थी, अतः नानी जी टोने-टोटके करती रहतीं।

□

सुलतानपुर में मुहम्मद बख्श नाम का कुटाना रहता था—विशाल काय। वह और उसका पुत्र बड़े अत्याचारी डाकू थे। उन्होंने शहर के पास एक ज़मींदार के खेत पर छोटा-सा कूप बनवाकर अधिकार जमा लिया। किसी को समीप न फटकने देता। ज़मींदार ने सीमांकन की अर्ज़ी दी। कानूँगो को साहस न हुआ और सीमांकन का काम मुझे सौंप दिया। सीमांकन करने जब मैं गया तो ज़मींदार साथ तक न चला भय के कारण। परन्तु कुटाने ने मुझे सम्मानपूर्वक कहा—'आप जो जी चाहे लिखें, जब कब्ज़ा लेने कोई आवेगा तो देख लूँगा।' मुझे इस साहस का बदला चुकाना पड़ा। गुण्डों ने मेरी गाय चुरा ली जो वापस न मिली।

□

एक रात्रि को कुसमय मेहमान आया। मैंने माता जी को रोटी बनाने के लिए कहा। माता जी कहने लगीं—'आटा तो है नहीं!'

मैंने कहा—'माटा देखें!' उन्होंने माटा को उलटाया तो मेहमान के लिए आटा निकल आया। रोटी बनवाकर अतिथि-सत्कार किया। परमेश्वर ने लाज रक्खी।

□

मेरे घर में अनाज समाप्त हो गया। माताजी ने कहा—'टेका! दाने खतम हो गए हैं।'

ग्रामों में प्रायः दुकानदार व्यापारी लोग अपने पल्ले (भण्डार) भर

रखते हैं और ज़रूरतमन्दों को बेचते हैं। मैं एक धनी से मूल्य पर अनाज लेने गया तो वह पल्ला न खोले। बाज़ार में परचून बिक्री का रिवाज न था। बड़े हिन्दू साहूकारों के पल्ले तो भरे हुए थे, परन्तु ५-१० रुपये के लिए पल्ला खोलने को तैयार न हुए। मैं वसाया नून के कूप पर गया। उसे कहा कि मेरे घर दाने नहीं हैं। उसने ताज़ी कटी फसल से दाने निकलवाकर टोपा दाने (आधा मन) दिये जिसका मैंने कुछ अधिक मूल्य उसे दिया। बड़े हिन्दू साहुकार और साधारण पड़ोसी मुसलमान ज़मींदार के व्यवहार में कितना अन्तर!

□

दुष्काल की सम्भावना थी। गुप्त प्रेरक सवितः देव ने मुझे प्रेरणा की—भिक्षा माँगकर दीन-दुःखियों की सेवा करो! अनाज इकट्ठा करो! उसी दिन से मैंने एक लोटा मिट्टी का लिया, उसके निचले भाग को काला कर दिया। बाज़ार में एक-एक दुकान पर जाकर लोटा आगे करता। दुकानदार बड़े आदर से उसमें दाने अथवा पैसा-पाई डालते। यह क्रम कई मास तक चलता रहा और इस प्रकार ग़रीबों की सेवा मैं करता रहा।

□

सन् १६०८ में शीत ज़ोरदार थी। मेरे घर के चौबारे की खिड़की के किवाड़ न थे। मेरे पास एक ही कमरा था जिसमें सब सोते थे। रात्रि में माता व नानी को ठण्ड बहुत सताती। माता जी ने किवाड़ लगवाने के लिए कहा। मैंने मुहम्मदबख़्श खाती को कहा। वह ज़मींदार भी था। मैंने पूछा—'क्या ख़र्च आएगा?' उसने कहा—'किवाड़ लगा देंगे, परन्तु ख़र्च न लेंगे।' मैंने बिना दाम लगवाना स्वीकार न किया। वहाँ एक ही खाती था। सर्दी में ठिठुरते तो रहे, परन्तु अपना संकल्प कमज़ोर न किया। दूसरी ओर उपेक्षा समझिये। वृद्धों ने सारी सर्दी ठिठुर-ठिठुरकर काटी।

□

मैं ख़रीफ़ की गिरदावरी पर मौज़ा पठानकोट गया हुआ था कि पीछे नायब तहसीलदार शेख़ फ़ैज़बख़्श साहिब बिना सूचना दिये आ गए। स्कूल में डेरा लगाया। पूछने पर उन्हें पता लगा कि पटवारी गिरदावरी पर है। वक्त काटना कठिन-सा था।

ख्वाजा नूर मुहम्मद वयोवृद्ध ज़मींदार थे। उधर से गुज़रे तो अर्दली से पूछने पर पता लगा कि फ़ैज़वख़्श साहिब आए हैं। अन्दर चले गए। ख्वाजा साहिब सुलतानपुर के सब व्यक्तियों को जानते थे। बातों-बातों में तहसीलदार ने पटवारी के सम्बन्ध में पूछा तो ख्वाजा ने पटवारी की ईमानदारी, सज्जनता, कार्य-कुशलता की भरसक प्रशंसा की, जिससे शेख़ साहिब को पटवारी के दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई।

सायंकाल जब लौटा तो राज्य-कर्मचारी का डेरा देख अन्दर गया अभी काग़ज़ात भी मेरे पास ही थे। जाकर सलाम किया।

तहसीलदार—'पटवारी ! कहाँ गए थे ? हम कब के आए बैठे हैं !'

मैं काँपकर बोला—'श्रीमान ! मैं गिरदावरी करने गया था।

तहसीलदार—'अच्छा जाओ, काग़ज़ात रख आओ। अब तो समय नहीं, कल प्रातः पड़ताल करेंगे।

मेरे घर पहुँचने पर मौलवी नूर मुहम्मद मेरे पास आए और तहसीलदार से अपनी भेंट का सारा हाल सुनाया।

रात्रि का समय हुआ। मैं तहसीलदार को सलाम करने गया।

तहसीलदार—'पटवारी ! सुना है तुम दयानतदार हो। कोई कष्ट तो नहीं ? यदि हो तो मैं तुम्हें अलीपुर तब्दील करा दूं। धर्मात्मा कर्मचारी सदर (तहसील) में रहकर उन्नति कर सकता है। यह स्थान तहसील से दूर है, अधिकारियों का आना-जाना कम होता है।'

मैं बोला—'हाँ श्रीमन् ! और तो कोई कष्ट नहीं, खाती ने खिड़की को किवाड़ लगा देने से इन्कार कर दिया, मोची जूता नहीं बना देता। साहुकारों ने अपने पल्ले से मूल्य पर अनाज देने से इन्कार कर दिया। हम सब घरवाले एक ही जूती से काम चलाते हैं।

यह बात सुनकर साहिब बहुत आवेश में आ गए और अपशब्द बोलकर कहा—'अभी शहर के हिन्दुओं को बुलाओ ! उनपर टैक्स लगाता हूँ। हरामज़ादे लोगों ने समझ क्या रक्खा है ! ऐसे धर्मात्मा ग़रीब पटवारी की परवाह ही नहीं करते।'

मैं डर गया। चपरासी को भेजा कि साहुकारों को बुला लाओ। मुझे कहा—'कल प्रातःकाल काग़ज़ात ले आना, पड़ताल के लिए चलेंगे और फिर मैं वहाँ से अलीपुर चला जाऊँगा।'

रात्रि बहुत बीत चुकी थी। साहुकारों को साहिब से मिलने का अवसर ही मैंने टाल दिया और प्रातः काग़ज़ात लेकर तहसीलदार के पास पहुँच गया।

साहिब घोड़ी पर चढ़ा और पूछा—'पटवारी ! तुम्हारी घोड़ी !'

मैंने कहा—'हुज़ूर ! मेरी घोड़ी नहीं है।'

साहिब तनिक क्रोध से बोले—'तो तुम मेरे साथ कैसे चल सकोगे ? मैंने शीघ्र अलीपुर पहुँचना है। उन खातियों-मोचियों को भी पेश करो !'

मैंने कहा—'हुज़ूर, एक फलांग का मुझे फ़ासला दे दें, प्रभु ने चाहा तो हुज़ूर की घोड़ी के साथ ही मिला रहूँगा।'

तहसीलदार—'अच्छा ?'

प्रभु ने मेरी लाज रक्खी। मैं तहसीलदार के साथ ही मौके पर पहुँच गया। साहिब ने गिरदावरी की पड़ताल की। यहाँ सब क्षेत्र ख़रावा के थे। बनवाड़ (कपास) थी। खेतों के स्वामी भी आ गए। साहिब से कहने लगे—'हुज़ूर, हमारी फ़सल सारी ख़रावा है, कृपा करना !'

साहिब—'तुम्हारे पटवारी ने पहले ही सारा ख़राबा लिखा हुआ है। तुम कौन हो ?'

ज़मींदार—'हुज़ूर, हम खाती (तरखान) हैं।'

तरखान का नाम सुनते ही तहसीलदार आग-बगूला हो गए। सौ-सौ अपशब्द कहे। कहा—'बेईमान ! बेहया ! तुमको पटवारी ने खिड़की के किवाड़ लगाने को कहा था न ?'

तरखान—'हाँ, हुज़ूर !'

तहसीलदार—'क्यों नहीं लगाई ?'

तरखान—'हम तो लगा देते, मगर पटवारी साहिब दाम देता था।'

तहसीलदार—'तो तुम धर्मात्मा को पापी बनाना चाहते थे ?'

एक सोटी का प्रहार भी किया और कहा—'अभी किवाड़ लगा दो और रसीद अलीपुर पेश करो ! मैं इस पटवारी को तुम्हारे यहाँ नहीं रहने दूंगा। ऐसा पटवारी दूंगा जो तुम्हारी स्त्रियों के सतीत्व भी नष्ट करेगा और तुम्हें लूट-लूटकर भी खाएगा। चलो दौड़ो !'

तरखानों ने किवाड़ भी लगा दिये, पाँव भी पड़े। रसीद पेश करने से मैंने रोक दिया।

प्रभु ने कष्ट कैसे दूर कराया ! अकस्मात् तहसीलदार सुलतानपुर पहुँचा और सब कष्ट दूर हुए।

मेरी तब्दीली अलीपुर हो गई।

□

घूंस न मिलने पर मियाँ मुहम्मदबख़्श कानूंगो ने नए तहसीलदार

को मेरे विरुद्ध बहुत उकसाया तो तहसीलदार आवेश में आ गया।

तहसीलदार—'इसके काग़ज़ात कहाँ हैं ?'

पटवारी ने निकाल दिये।

तहसीलदार—'ये तो नियम-विरुद्ध हैं !'

पटवारी—'मगर कानूँगो ने अपने हाथ से बनाए हुए हैं और स्वयं ही वह काग़ज़ात तैयार करके दे गए हैं।'

तहसीलदार ने आवेश में कोई अपशब्द भी शायद कहा। भय से मेरी बाँह उनकी दबात से लगी और गिर पड़ी, मगर टूटी नहीं। आवेश में आकर सब पटवारियों और जनता के सामने मेरे गाल पर वेग से तमाचा मारा और अपशब्द भी कहे—'नालायक पटवारी ! लाओ रोज़नामचा !' रोज़नामचे पर लिखा—'यह पटवारी अयोग्य है, कामचोर है, इसका इन्तकाल ठीक नहीं, इसने नियम-विरुद्ध काम किया हुआ है।' ऐसे बहुत-से कठोर शब्द लिखकर लिखा कि 'यदि दूसरी बार यही अवस्था रही तो पदच्युत कर दिया जावेगा।'

मुझको भी क्रोध तो बहुत आया, मन में वलवले उठते रहे कि रजिस्टर उसके मुँह पर दे मारूँ, परन्तु सविता देव ने हाथ बाँध दिये। सब पटवारी और जनता यह घटना देखकर बड़े चकित हो गए। आज्ञा दी कि 'जाओ, हमारे मुंशी के पास मिसल देखकर काग़ज़ तैयार कर लो !'

मुंशी बुलाकीदास मुर्हरिर जुडीशल था। वह भी बहुत अफ़सोस करने लगा, संवेदना प्रकट की और मिसल निकाल दी। मैं नक़ल करने बैठ गया और सायं को घर चला गया।

मैं अपने स्थान पर अकेला था। उद्विग्न मन में रात्रि को वलवले आते रहे। मैंने अपनी इस दुर्घटना की एक दरख़्वास्त कमिश्नर साहिब के नाम, एक ज़िलाधीश के नाम, एक राजस्व-अधिकारी के नाम और एक तहसीलदार साहिब के नाम लिखता रहा कि कल की डाक में इन सब साहिबान को भेजूंगा। दीवान गोवर्धनदास को भी दिखाई। लिखते-लिखते रात्रि का बड़ा भाग गुज़र गया।

पश्चात्ताप और क्षमा—इतने में तहसीलदार का चपरासी पं० खुशीराम आ गया और कहा—'तहसीलदार साहिब बुला रहे हैं, उनको बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। मैंने उनसे कहा कि आपने एक दयानतदार, सज्जन, निर्दोष पटवारी को पीटा है, लोगों के सामने उसका अपमान किया है। आप नए-नए थे, उनकी ख्याति व मान-प्रतिष्ठा का ज्ञान न था। उधर श्री बुलाकीदास रीडर ने भी, जो उनका मुलतानी भाई था, कहा कि आपने

भारी भूल की है, इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। ज़िला के, तहसील के सब अधिकारी-कर्मचारी तथा प्रजा उसे जानती है कि वह कैसा श्रेष्ठ पुरुष है। आपने उसे तमाचा मारा ! वह भी आप-सरीखा सरकारी नौकर है। आपने अच्छा काम नहीं किया। बड़ी जनसंख्या के सामने, ज़मींदारों के सामने आपने यह निन्दित कर्म किया है। सब इसे बुरा मान रहे हैं। आपकी प्रशंसा नहीं हो रही, निन्दा हो रही है। तहसीलदार साहिब स्वभाव से तो शीतल सज्जन पुरुष थे, परन्तु 'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' अब अपने कर्म पर पश्चात्ताप करने लगे। उन्हें निद्रा न आई और आकर खुशीराम (मुझे) से कहा कि 'पटवारी को बुलाओ, रोज़नामचा साथ लावे।'

मैं यह सुनकर चपरासी के साथ तहसीलदार के मकान पर पहुँच गया। सब कोई सो चुके थे। मैंने प्रणाम किया। जिस आसन पर तहसीलदार बैठा हुआ था, पीछे बड़ा तकिया लगा हुआ था। मेरा हाथ पकड़कर उसी आसन पर बिठा लिया और स्वयं सामने चटाई पर बैठ गए।

मैं लज्जित हुआ और खड़ा होकर बोला—'यह हुज़ूर का आसन है, हज़ूर ही बैठें, मैं कैसे बैठूं ?'

तहसीलदार—'नहीं, आप बैठें ! मैं अपराधी के रूप में सामने बैठूंगा।' यह कहकर मुझको आसन पर बिठा दिया। सहसा मेरे चरणों पर हाथ रखकर, ज़रा झुककर, करबद्ध क्षमा-याचना की—'मैंने बड़ा अपराध किया है। मुझे आपका ज्ञान न था कि आप कैसे आदमी हैं। मैं शीतल स्वभाव, आयुभर में कभी क्रोध नहीं किया। आज न जाने मुझे क्या हो गया ? मैं क्षमा माँगता हूँ। मुझे दिल से क्षमा करो !'

मेरा दिल आर्द्र हो गया और करबद्ध निवेदन किया—'श्रीमान् ! इसमें हुज़ूर का कोई दोष नहीं है। मेरा अपना दुर्भाग्य था। अब मुझे कोई रोष नहीं रहा।'

तहसीलदार—'मियाँ मुहम्मदबख़्श ने आपके प्रति बहुत निन्दा करके उकसाया। मैं नया आदमी हूँ, किसी से परिचित नहीं। ख़ैर, मैं इसका प्रत्युपकार चुकाऊँगा। टेकचन्द, यह चाँटा सौभाग्य का चाँटा समझना ! अवश्य ऋण चुकाऊँगा। लाओ रोजनामचा !'

मैंने रोजनामचा पेश किया। वह पृष्ठ फाड़ने लगे।

मैंने सहमते हुए कहा—'श्रीमन् ! क्यों फाड़ते हैं ? आपने कानूँगो के रूबरू (सामने) लिखा है। वह जब देखेगा तो श्रीमान के प्रति भी उसे निन्दा करने का अवसर मिल जावेगा।'

तहसीलदार—'वह मेरे आधीन है, या मैं उसके आधीन हूँ ? परवाह

न करो ! मैंने ही लिखा और मैं ही फाड़ता हूँ। तुमको क्या ?' फाड़कर उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया और रोज़नामचा नये सिरे से लिखा—'पटवारी सुयोग्य दयानतदार है। इन्तकाल पेश किये। अपर्याप्त समय के कारण आसामियों को सूचना नहीं मिली और विभाजन की मिसल देखकर काग़ज़ात की नकल कर लेवे। आगामी दौरे पर पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जावे !'

जब उठने लगे तो फिर बड़ी नम्रता और प्रेम से विदा किया, फाटक तक पहुँचाया। फिर तो बड़ी कृपा करते रहे।

□

मेरा वेतन २६ रुपये मासिक हो गया, जिसमें से ढाई रुपये मासिक किराया मकान, दो रुपये हवन का खर्च, पाँच रुपये भाई के ऋण की किस्त, शेष साढ़े दस रुपये में से एक रुपया विधवा बुआ को देता था। भत्ता मिलने पर निर्वाह हो जाता था।

एक बार अफसर माल साहिब दौरे पर गए। वह स्थान अलीपुर से केवल सात मील दूर था। लोगों ने अपनी दरख्वास्तें दौड़-दौड़कर ताँगे में पीछे बैठे हुए मुझको दे दीं तो दीवान साहिब से न रहा गया और चिल्लाकर अफ़सर को सम्बोधित करके कहा—'देखो साहिब ! टेकचन्द लोगों की दरख्वास्तें चलते-चलते मार्ग में ले रहा है ! लोग इतने नवाब हो गए हैं कि सात मील की यात्रा भी नहीं कर सकते ! यह आपका अपमान कर रहा है !'

यह सुनकर अफ़सर साहिब मुझसे नाराज़ हुए और कहा कि 'तुम ऐसा करके हमारा अपमान करते हो !'

मैं कुछ देर बाद बोला—'भगवन् ! मैं आपके नाम का यश बढ़ा रहा हूँ। लोग कहेंगे—देखो ! यह साहिब कितना दयालु, दयानतदार और सरल-स्वभाव है ! लोगों के कष्ट का कितना ध्यान रखता है कि जिस समय जिस स्थिति में चाहो फ़रियाद कर लो, दरख्वास्त दे दो, द्वार खुला है ! लोग तो आपके गुणगान करते हैं !'

साहिब यह सुनकर हँस पड़े।

दौरे के बिल बनते भत्ते के। वह अन्य कर्मचारियों तथा चपरासियों से मिलकर फ़र्ज़ी बिल बनाने लगे। दो आने मील चार्ज करने लगे। मैं वास्तविक किराया चार्ज करता। वे रसीदों पर अंगूठे भी फ़र्ज़ी लगवा लेते। वसी का नवीस (एकाउँटेंट) देखकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने आपत्ति उठाई कि एक ही विभाग, एक ही अफ़सर के एक ही दौरा में कर्मचारियों

के बिलों में अन्तर क्यों है ? अब सब कर्मचारी और चपरासी मुझे कोसने लगे।

मैंने कहा—'मैं तो विवश हूँ। यद्यपि राज्य-नियम से मेरा भी अधिकार है जैसे आपने बताया, परन्तु ज़िलाधीश की जो आज्ञा है कि वास्तविक व्यय लो, तब मैं कैसे कृत्रिम विज्ञ और रसीदें बनाऊँ ?'

उन्होंने कहा—'आपकी ख़ातिर हम सब-कुछ कर-करा देंगे।'

मैं न माना। अन्ततः कार्यालय-अध्यक्ष तक मामला गया। अध्यक्ष महोदय ने मुझको सबके साथ सहयोग देने को कहा, परन्तु मैंने उत्तर दिया—'मैं इतना कर सकता हूँ कि अपना बिल न दूँ; झूठ करूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता।'

किसी स्याने कर्मचारी ने उनको सलाह दी कि तुम अपना बिल टेकचन्द के बिल के एक माह बाद किया करो। जब सब इकट्ठे न होंगे तो कौन और क्यों आपत्ति उठावेगा ? फिर इसी प्रस्ताव पर आचरण होता रहा।

□

राजस्व-अधिकारी का रीडर मौलवी फ़तहउद्दीन था। नमाज़ के समय अदालत छोड़कर चला जाता; नमाज़ पढ़ने के बाद वापस आ जाता। अफ़सर उसे पूछ न सकता था। इधर मेरी यह अवस्था थी कि पेशी में खड़े-खड़े घण्टों बीत जाते, रात हो जाती, फिर घर जाकर हवन-सन्ध्या करके रोटी खाता।

दौरा में अफ़सर-माल, दीवान वड्डाराम, चपरासी-नौकर सब मांस खाते। मैं चौका में भोजन न करता, न उनके घड़े से पानी पीता; अलग अपने लिए मिट्टी का लोटा भर रखता। अफ़सर-माल के बिना कोई अपनी रोटी के दाम न देता। सारा ख़र्च नम्बरदार पर रहता। दूध भी वही पिलाते।

दीवान वड्डाराम ने साहिब से शिकायत की कि टेकचन्द हमारे चौके व वस्तुओं से घृणा करता है। साहिब ने मुझसे पूछा। मैंने साफ़ कहा कि प्रतिदिन मांस पकता है, मुझे दुर्गन्ध आती है, दिल कच्चा होता है, इसलिए चौके में नहीं जाता।

शुभ घड़ी थी। साहिब ने कहा—'यदि हम मांस न पकवाएँ तो हमारे चौके में खाओगे ?'

मैंने कहा—'हाँ हुज़ूर !'

साहिब ने नौकर को आदेश दिया—'गर्मियों के दिनों में मांस न बनाया करो !'

☐

अलीपुर का दौरा था। भूमि प्राप्ति की रिपोर्ट मैं लिखवा रहा था, साहिब अंग्रेज़ी में अनुवाद कर रहे थे। रात का काफ़ी हिस्सा बीत गया। साहिब ने कहा—'टेकचन्द ! मैं भोजन कर लूं, तुम भी कर लो, फिर काम करेंगे।'

मैंने कहा—'श्रीमन् ! आप भोजन कर लें, मैं बैठा हूँ। लिखवाकर ही जाऊँगा।'

साहिब—'क्यों ?'

मैंने बताया—'मैं शहर जाकर हवन-सन्ध्या करूँगा, तभी रोटी खाऊँगा।'

साहिब—'अब रात्रि में जाकर हवन करोगे ?'

मैंने कहा—'यही तो हिन्दुओं में कमज़ोरी है कि परमेश्वर की पूजा को महत्त्व नहीं देते। मुसलमान अपने धर्म के पक्के हैं। आपका रीडर मौलवी फ़तहउद्दीन नमाज़ के समय काम छोड़कर जाता है। न वह आज्ञा लेता है, न आप उसे कुछ कह पाते हैं। उन्हें अपने धर्म व परमेश्वर का भय है। यदि आप सन्ध्या-हवन करनेवाले होते तो मुझे भी वक्त पर सन्ध्या-हवन करना मिल पाता।'

उन्हें ऐसा जँचा, मानो ! प्रभु का आशीर्वाद बरसने लगा; आज्ञा की कि—'अच्छा टेकचन्द ! बाकी काम कल करेंगे। मैं जब कॉलिज में पढ़ता था, सन्ध्या-हवन करता था। अब नीचे बैठा नहीं जाता, हवन कर नहीं सकता। हाँ, सन्ध्या जरूर करूँगा, वह भी जब तुम ऊँचे स्वर में बोलते जाओगे।'

मैंने कहा—'श्रीमान की बड़ी कृपा !'

साहिब—'टेकचन्द ! तुम थक भी जाते होगे, घण्टों खड़े रहना पड़ता है।

मैंने कहा—'कुर्सी पर बैठनेवालों को खड़े रहनेवालों के कष्ट का क्या अनुभव हो सकता है ?'

साहिब—'अच्छा, अब तुम बिना संकोच जब लिखाने आओ तो कुर्सी पर बैठ जाया करो, चाहे मेरे घर पर हो, दौरे में हो अथवा कचहरी में।'

तब से मैं जब रिपोर्ट लिखवाने जाता, कुर्सी पर बैठ जाता। एक बार सदर से दौरा का स्थान साढ़े १६ मील दूर था। वहाँ तम्बू लगे हुए थे। सब ताँगे पर जा रहे थे। मैंने तम्बू देखकर रोका, परन्तु साहिब ने कहा—'नहीं, आगे चलो। डेढ़ मील आगे जाकर वापस आए और अपने तम्बू में चले गए।'

मेरे पूछने पर उन्होंने कहा—'साढ़े १६ मील का भत्ता कम मिलता। अब इक्कीस मील का चार आने मील के हिसाब से सवा पाँच रुपये साहिब का, दो रुपये दस आने प्रति कर्मचारी का भत्ता बन जाएगा।'

युक्ति तो ठीक थी! असत्य भी न बोलना पड़ा और काम भी बन गया। परन्तु है तो फ्राड (Fraud)! आत्मा इस विधि तथा युक्ति से मलिन होती है। मुझे अपनी आत्मा की उज्ज्वलता का ध्यान था। मैंने अपना सही बिल बनाया।

मिस्टर डेन का समय

राय साहिब तब्दील हो गए और मिस्टर ए० एस० एम० डेन तहसीलदार आए—वयोवृद्ध, परन्तु काम में प्रवीण थे। सारा कार्य घर पर करते; दौरे पर बहुत कम जाते थे। अपना बिल-भत्ता स्वयं बनाते। मुझ पर मेहरबान थे। मैंने भत्ता बनाना छोड़ दिया, ताकि बिलों में भेद न उपजे।

साहिब मुझे कमीशन दिलवाते थे। एक बार चपरासी को कहा कि 'हमारे लिए लकड़ियों के ऊँट लाओ और एक ऊँट मुंशी के घर डलवा देना, अल्प वेतन है, कठिनता से गुज़ारता होगा!'

चपरासी ने एक ऊँट मेरे घर के सामने डलवाकर ऊँचे स्वर में माता जी को कहा—'लकड़ियाँ अन्दर उठवा लेना!'

मैं न्यायालय से घर रोटी खाने आया तो लकड़ियाँ बाहर पड़ी मिलीं। माता जी ने पूछा—'किसको लकड़ियाँ डालने को कहा था!'

मैंने कहा—'मुझे ज्ञान नहीं। मैंने किसी को कहा भी नहीं।' चपरासी से जाकर पूछा तो उसने बतलाया कि तहसीलदार के आदेश से वह डलवा आया।

मैंने उसे कहा—'कृपया उठवा लो, मैं उन लकड़ियों का प्रयोग नहीं करूँगा।' चपरासी मेरे व्रत व आदत से वाक़िफ़ था; लकड़ियाँ उठवा लीं।

साहिब ने अपनी मेम साहिबा से मेरी ग़रीबी के गुज़र की बात की; कहा कि 'मुंशी के घर चारपाइयाँ भी नहीं हैं, भेज दो!'

मेम साहिबा ने चपरासी को भेजकर मेरे पुत्र गणपति व भांजा विसंदाराम को बुलवाया। दोनों को झोली-भर चावल और चार-चार आने दिये कि जाओ, माताजी से बनवाकर खाना।

लड़के घर आए तो माँ ने पूछा—'कहाँ से लाए हो?' तो उत्तर दिया 'मेम साहिबा ने प्यार भी किया, चावल व चार-चार आने भी दिये!' माँ ने पूछा—'पिताजी से पूछकर आए?' कहा—'नहीं।' माताजी ने आदेश दिया—'वापस कर आओ।' बच्चों ने कहा—'यदि वापस न ले तो?' तब माँ ने कहा—'उसके सामने डालकर पैसे भी रख देना और भाग आना। बुलाने पर वापस न जाना!' बच्चों ने ऐसा ही किया।

तहसीलदार को मैंने कह दिया कि हमारे पास चारपाइयाँ ज़रूरत-अनुसार हैं, आप कष्ट न करें।

□

एक बार लाला रैमलदास अर्ज़ीनवीस पर जालसाज़ी का मुकद्दमा चला। जाँच के लिए मिसल डेन साहिब के पास आई। साहिब ने अपने बक्स में रक्खी। कई सिफ़ारिशें भेजी गईं, मगर व्यर्थ! साहिब ने रिश्वत भी न स्वीकारी।

लाला पोखरदास प्रसिद्ध अर्ज़ीनवीस थे। लाला रैमलदास ने उनसे मश्विरा किया। पोखरदास ने कहा—'यदि लाला टेकचन्द तहसीलदार से कहें तो आपका बाल बाँका न होगा।' रैमलदास मेरे पास आए। मैंने कहा—'यदि मेरे कहने से साहिब मान जाता है, तो मैं अपनी पगड़ी उनके चरणों में रखने को तैयार हूँ।' पोखरदास ने फिर कहा—'यह काम आप ज़रूर करावें।'

मैं लाला रैमलदास को साथ लेकर साहिब के आँगन में गया। साहिब सूचना पाते ही आए और कुर्सी पर बैठ गए। मैंने अपनी पगड़ी उनके पैरों पर रख दी और हाथ जोड़े।

साहिब अचम्भे में बोले—'अरे-अरे! यह क्या करते हो?' पगड़ी उठाकर मेरे सिर पर रक्खी और पूछा—'क्या बात है?'

मैंने कहा—'यह लाला रैमलदास मेरे पिता हैं···मैं इनके घर पला हूँ। बस, क्षमा-याचना चाहते हैं।'

साहिब ने रैमलदास को देखा तो आवेश में भर गया, परन्तु ज़ब्त से काम लिया और चपरासी को मिसल निकाल लाने का आदेश दिया, फिर अन्तिम निर्णय रिपोर्ट का सुनाया जिसमें लिखा था—'रैमलदास का लाइसेंस ज़ब्त किया जावे और उसे कारावास में दे दिया जावे!'

इतना सुनाकर सारी रिपोर्ट निकालकर मेरे ही सम्मुख फाड़ डाली और कहा —'अब जाओ !' स्वयं अन्दर चले गए।

लाला रैमलदास विमुक्त हुए। मेरी प्रभु ने लाज रक्खी।

□

सरकारी नियम था कि जितने बन्दी कारावास में हों, रजिस्टर में उनकी उपस्थिति दर्ज हो। दिन में कुछ नए आते, कुछ रिहा होते। सायं के बाद कोई नहीं आता था। जमादार सायं को गार्ड गिनकर मुहर्रिर जुडीशल के रजिस्टर पर हस्ताक्षर लेता। सदैव प्रातः भी हस्ताक्षर होते। राय त्रिलोकचन्द जमादार की मेरे साथ अच्छी पटती थी। वह शहर में घर जाकर सोता। विश्वास पर राय साहिब कई-कई दिनों के हस्ताक्षर करते-करवाते।

एक रात्रि को चार या अधिक चोर सेंध लगाकर भाग गए। पहरेवाले ऊँघते रहे, पता ही न लगा। पहरा बदलने पर भी बन्दी गिने जाते थे।

प्रातः जब सेंध नज़र आई तो वावेला मचा !

इन्स्पैक्टर-पुलिस मौके पर पहुँचे। जमादार आदि मेरे हस्ताक्षर एक महीने से नहीं हुए थे, जो झटपट कर दिये गए।

अब ज़िम्मेवारी अन्तिम पहरेवाले पर थी। अभियोग चला। मैजिस्ट्रेट व सिपाही मुसलमान थे। मैजिस्ट्रेट साहिब मेरे चरित्र से वाक़िफ़ थे।

मेरा बयान इस प्रकार हुआ—

'अमुक तिथि सायं को मेरे रजिस्टर में इतने बन्दी दर्ज हैं। प्रातः जब आया तो सब इकट्ठे थे; वावेला मचा हुआ था। रिसालदार साहिब ने बन्दी गिनवाए तो इतने कम थे, रजिस्टर पेश है।'

रजिस्टर देखकर अदालत ने पूछा—'यह हस्ताक्षर कैसे हैं ?'

मैंने कहा—'जमादार गार्ड के हैं, ताकि हर सायं को यह मालूम रहे कि इतने बन्दी हैं।'

राय साहिब ने जिरह की —'क्या सायंकाल को हस्ताक्षर कराए थे ?'

मैंने सच बोल दिया—'नहीं। प्रातः को कराए जब बन्दी न थे।'

राय साहिब—'कितने दिन के कराए ?'

मैंने बता दिया —'एक मास के, परन्तु विश्वास का क्या परिणाम हैं ?'

राय साहिब (अदालत से)—'देखिये भगवन्, यह है अहलकाराना विश्वास !

अदालत—'जमादार साहिव ! आपके इस प्रश्न से टेकचन्द को कोई पकड़ नहीं होती। अदालत ने आपके हस्ताक्षर देखने हैं। आप सब स्वीकार करते हैं कि चोर भाग गए। यदि नहीं तो सेंध किसने लगाई? यह तो आप अपने ऊपर और भार ले रहे हैं। एक भद्र पुरुष के विश्वास पर आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता।'

कचहरी के बाहर मैंने जमादार से कहा—'अफ़सोस, आप यह क्या कर रहे थे ?'

वह कुछ शर्मिन्दा होकर चुप रहा।

□

डेन साहिव की जगह लाला लालचन्द बहल तहसीलदार होकर आए। सख्ती से पेश आते। मेरे साथ बेरुख़ी बरतते थे। तीव्र बुद्धि थे मगर स्वभाव के उतावले थे। रोष में सब भूल जाते, परन्तु बदनीयत न थे।

बहल साहिव ने अकस्मात् दौरा रख दिया जगमल मौजे का, जतोई से पाँच मील दूर। साहिव घोड़ी पर पहुँचे, मैं सायं को पैदल पहुँचा। शून्य स्थान था; कोई ग्राम पास न था। कोई पटवारी, गिरदावर, नम्बरदार, ज़ैलदार उपस्थित न था। साहिब अकेले टहल रहे थे। तहसीलदार के कहने पर चपरासी मुझे बुला गया। मैंने पहुँचकर प्रणाम किया। साहिब खाट पर बैठ गए, मुझे दरी पर बैठने की आज्ञा दी।

तहसीलदार बोले—'मुंशी जी ! कोई समाचार सुनाओ !'

मैंने पूछा—'कैसा समाचार भगवन् ?'

तहसीलदार ने कहा—'डाके जो पड़े, उनका।'

मैं बोला—'कहाँ से सुनाऊँ ?'

तहसीलदार—'कहाँ से कैसे ? कोई तुम्हारे पास डायरी अथवा पुस्तक है ?'

मैंने कहा—'जी हाँ, है।'

तहसीलदार—'कहाँ है और उसमें क्या है ?'

मैंने कहा—'उसमें डाकों सम्बन्धी सब समाचार हैं। जहाँ, जिस तारीख़, जो-जो बीती, वह विस्तार से है। लोग जो आपबीती आकर सुनाते, उसे मैं रोज़ लिखता रहा। मगर वह पुस्तक मुज़फ़्फ़रगढ़ में लाला गेलाराम वकील के पास है।'

तहसीलदार ने कुछ समाचार सुने और कहा—'इस तरह रस नहीं आता, वह पुस्तक मुझे अवश्य पढ़नी है।' आज्ञा दी—'प्रातः वापस चलो !'

अलीपुर पहुँचकर तहसीलदार ने कहा—'लाला गेलाराम के लिए मुझे पत्र दो, मैं स्वयं जाकर पुस्तक लाता हूँ।'

मैंने पत्र दे दिया।

तहसीलदार उसी दिन मुज़फ्फ़रगढ़ गए और पुस्तक ले आए। उसके बाद मेरे प्रति उनका रुख़ बदल गया।

पुस्तक-लाभ उठाने के लिए वह चार दिन की छुट्टी लेकर लाहौर भी गए, परन्तु उनकी मंशा पूरी नहीं हुई। वापसी पर मुझे हाल बताया।

पुस्तक में कुख्यात डाकुओं, उनके सरदारों और आश्रयदाताओं का पूरा वर्णन था।

बहल साहिब अपने साथ पिस्तौल रखते थे। जहाँ दौरा रखते, बिना सूचना दिये जाते, अतः ज़मींदारों के होश उड़ जाते। उदाहरणतः जगमल गए। साध पीरू वाली बस्ती के ज़मींदार मिलने आए। फ़रमाया—'डाका डालनेवाला अहमद ख़ाँ है?'

अहमद ख़ाँ ने कहा—'नहीं हुजूर!'

तहसीलदार—'अच्छा, तुमको पता निशान दे दूँ। अमुक कूप पर तुम खड़े थे। अमुक दिशा में डाकुओं को भेजा। चौधरी नानूराम नम्बरदार बन्दूक में गज भरते रह गया, गज भर न सका था।'

यह सुनके उसके होश उड़ गए।

लोग सुनकर हैरान थे कि अभी एक महीना इन्हें तहसील में आए हुआ है, कितनी आन्तरिक जानकारी इनके पास है! अवश्य कोई दैवी वर मिला हुआ है।

नम्बरदारों, ज़ैलदारों को बहल साहिब कहते—'वह भगोड़ा तुम्हारे पास है या तुम्हारी जानकारी में है तो उसे पेश करो, नहीं तो तुम्हारी ख़ैर नहीं।'

तहलक़ा-सा मच गया।

पुलिसवाले भी चौकन्ने हो गए कि तहसीलदार खोजकर दोषी पकड़ता है जो वस्तुतः उनका कर्त्तव्य है।

...

मल्लाँवाली का ज़ैलदार ऋणी बन गया। उसकी जगह पर सैयद फ़क़ीरशाह ने ज़ैलदारी के लिए अर्ज़ी दी। पुलिस पर उसका प्रभाव था तो पुलिस ने उसके नाम की सिफ़ारिश कर दी। तहसीलदार के पास मिसल आई। बहल साहिब किताब में पढ़ चुके थे कि फ़क़ीरशाह ने १२०० रुपये माँगे कि अलीपुर में डाका नहीं पड़ेगा। बहल साहिब ने भक्त राधूराम को

बुलवाया। उनसे १२०० रुपये फ़क़ीरशाह की माँग की तस्दीक़ की। राधूराम से सच्ची दरख्वास्त लिखवाकर अपनी रिपोर्ट सैय्यद फ़क़ीरशाह के विरुद्ध लिखकर मिसल भेज दी।

मिसल कमिश्नर हैलीफ़ैक्स साहिब के पास गई। बहल साहिब उनके दफ्तर के सुपरिंटेंडेंट रह चुके थे। कमिश्नर साहिव उन पर विश्वास करते थे। सैय्यद फ़क़ीरशाह की ज़ैलदारी की अर्ज़ी रद्द कर दी गई तथा डाकों की जाँच के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त करने के आदेश भी दिये।

राजस्व-अधिकारी श्री दीवानचन्द साहिब को विशेष-जाँचअधिकारी बना कर भेजा गया।

जब अलीपुर आए तो तहसीलदार ने सारा हाल बताया और जो मैंने 'दास्ताने ग़म' पुस्तक लिखी थी, उसका भी हाल दे दिया।

२६ से २६ सितम्बर १६१५ तक डाक बँगला में अदालत लगी बारी-बारी से सब साक्षी अपने ब्यान दे गए। मेरी बारी भी आई अधिकारी—'तुम क्या जानते हो?'

मैंने कहा—'श्रीमान् प्रश्न करेंगे तो वता सकूँगा।'

अधिकारी—'क्या सैय्यद फ़क़ीरशाह ने डाका के समय कुछ माँगा?'

मैंने कहा—'हाँ भगवन्! भक्त राधुराम फ़रियाद लेकर आये थे, तव इन्होंने १२०० रुपये माँगते हुए कहा कि यदि हमको दिया जाए तो हम ज़िम्मेवार हैं, डाका नहीं पड़ेंगा।'

अधिकारी—'कब माँगा? क्या तारीख़ थी?'

मैंने तारीख़ व दिन बता दिया।

अधिकारी—'यह तुमको कैसे याद है? इसका प्रमाण क्या?'

मैंने कहा—'दफ़्तर कानूगो के पास वर्षा की पंजिका है, वहाँ से तिथि का समर्थन हो सकता है। मिसल मुकद्दमा के पक्षवालों की उपस्थिति और स्थगित किए जाने की आज्ञा देखी जा सकती है।'

अधिकारी—'कोई और पक्की याददाशत बतलाओ।'

अकस्मात मेरे मुख से निकला—'मेरी पुस्तक में यह घटना दर्ज है।'

अधिकारी—'कौन-सी पुस्तक?'

मैं वोला—'दास्ताने ग़म'''सार्थक नाम है।'

अधिकारी—'उसमें क्या है?'

मैंने बताया—'यही डाकों के हालात हैं, जो कुछ बीती।'

अधिकारी—'क्या छपवाई है या नहीं?'

मैं—'नहीं, अभी तक छपवाई नहीं।'

इससे फ़क़ीरशाह घबराया।
अधिकारी (फ़क़ीरशाह से)—'कोई प्रश्न करना है ?'
फ़क़ीरशाह—'खैरपुर सादात का डाका कब पड़ा ?'
मैंने झट बता दिया—'नौ-दस मार्च रविवार की रात्रि को।'
फ़क़ीरशाह—'पहला डाका कब पड़ा ?'
मैंने यह भी बता दिया—'चंटूल की बस्ती ८-२-१५ को।'
बस, फिर तो फ़क़ीरशाह की हवाइयाँ उड़ने लगीं और बोला—'बस, हुजूर, और प्रश्न नहीं करता। उत्तर ठीक दिये हैं।
अदालत बन्द हुई। सब चले गए।

फ़क़ीरशाह ने लाला दीवानचन्द को पाँच सौ रुपये देकर मेरी तब्दीली करा दी।

माल-अफ़सर ज़िलाधीश के पास पहुंचे, मिसल पेश की कि फ़क़ीरशाह ने जो १२०० रुपये माँगे थे, सिद्ध हो गया है। मुहर्रिर जुडीशियल ने एक पुस्तक लिखी है 'दास्ताने-ग़म'। सार्थक नाम है, उसे ज़रूर देखा जावे।

फ़क़ीरशाह की ज़ैलदारी के प्रतिकूल लिखते हुए जिलाधीश ने टेकचन्द मुहर्रिर जुडिशियल की किताब 'दास्ताने-ग़म' भी मँगवाई।

दूसरे दिन तहसील अलीपुर में आदेश आ गया—पुस्तक 'दास्ताने ग़म' भेजी जावे। पुस्तक अभी भी श्री बहल साहिब तहसीलदार के पास थी मैंने माँगी ताकि भेजी जावे।

तहसीलदार—'टेकचन्द ! यह पुस्तक हिन्दू-मुस्लिम तनाव पैदा करने वाली है। व्यर्थ तुम पर भार आ जावेगा, इसे मत भेजो।'
सब कर्मचारियों ने भी समझाया पर मैं न माना।
तहसीलदार—'अच्छा एक छोटी संक्षिप्त पुस्तक बना दो जिसमें डाकों के स्थान, तिथि, हानि का तो अनुमान हो, परन्तु नाम किसी का न हो।'
मैंने छोटी पुस्तक बना दी। उसे तहसीलदार साहिब ने पसन्द किया।
मैंने पूछा—'क्या इस पर साहिब बहादुर मुझे बुलावेंगे ?'
तहसीलदार—'हाँ तुम्हारे वह बयान लेंगे।'
मैंने जानना चाहा—'यह भी पूछेंगे कि यही पुस्तक है या और भी है।'
तहसीलदार—'यह प्रश्न भी अवश्य होगा।'
मैंने जब यह सुना तो संक्षिप्त पुस्तक फाड़ दी।
तहसीलदार—'ओह ! अरे यह क्या किया ?'

मैं—'मैं असत्य नहीं बोल सकता। बस यही पुस्तक है, जिसे भेजा जावे।'

मित्रों, वकीलों, अर्ज़ीनवीसों ने बहुत समझाया, परन्तु मेरा उत्तर था कि मैं आत्मा का हनन नहीं करूँगा।

मैंने पूछा—'आप यह बतावें कि परिणाम क्या होगा?'

लाला पोखरदास—'सोहणे सेहरे या डीवे वट।'

यह मुलतानी भाषा की लोकोक्ति है—'या उन्नति होगी या रुख़सत'

मैंने कहा—'तब मैं अवश्य इसे भेजता हूँ।' और रजिस्ट्री द्वारा महता साहिब के नाम भेज दी गई।

इधर मैं स्वप्न देखने लगा कि नायब तहसीलदारी मिलेगी। यदि पेन्शन अच्छी हुई तो शीघ्र संन्यास ले लूंगा। फिर विचार आया—तू हुक्का पीता है, वह तुझ से छूटेगा नहीं और संन्यासी बन न पावेगा।

दूसरा विचार यह भी उठता कि कौन जाने सरकारी कोष में मेरा भोग समाप्त हो गया हो। खैर दोनों परिणामों के लिए मैं तैयार था।

क़िस्मत की ख़ूबी देखिये अटकी कहाँ जा टूटा कमन्द!

दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम रह गया।

रजिस्ट्री जब मुज़फ्फ़रगढ़ पहुँची तो महता जी दौरे पर थे। जब वापस आए तो नए जिलाधीश आ गए थे। उसने लिखा कि मैं उर्दू नहीं जानता—पुस्तक ख्वाजा सिराजुद्दीन साहिब अफ़सर ख़ज़ाना को दी जावे जो ध्यानपूर्वक पढ़ कर मेजर बक डी० सी० को सुनावें।

महता साहिब ने विवश होकर पुस्तक सिराजुद्दीन को दे दी।

ख्वाजा साहिब जतोई थाने के इन्चार्ज थे, जब डाके पड़े थे। एक रात्रि जतोई से सबारावाला तांगे पर गए। रास्ते में डाकुओं की आवाज सुनी। ताँगे वाले ने होशियार किया तो ख्वाजा साहिब ताँगे के होदे में छिप गए।

सबारावाला में जाकर डींग मारने लगे। परन्तु तांगे वाले ने यह बात जतोई में आकर मुझे बता दी थी।

ख्वाजा साहिब ने जब यह पढ़ा तो आग बबूला हो गए और शत्रु की दृष्टि से पढ़ने व नोट अलग कागज पर लेने लगे।

आवेश में जब मेंजर बक के पास जाने लगे तो वह नोट वाला कागज गिर गया। उन्होंने बक साहिब को जाकर कहा कि टेकचन्द मुहर्रिर जडीशियल अलीपुर ने जो यह पुस्तक लिखी है, सारी की सारी ग़लत है। सब अफसरों पर, अंग्रेजों पर और राज्य के विरोध में लिखा है। मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं

को उत्तेजित करनेवाली पुस्तक है। मेरे सम्बन्ध में भी लिखा है कि यह हौदे के नीचे छिप गया था। अब आप विचारें कि यह पुस्तक कहाँ तक ठीक है।

मेजर बक ने आदेश दिया कि टेकचन्द मुहर्रिर जुडीशियल ९-१०-१५ को हमारे समक्ष पेश हो।

तहसील से आदेश आया कि ९-१०-१९१५ को मेजर बक के सम्मुख पेश हो वो। मैं ज्वानिंग टाइम पर था, मुज़फ्फ़रगढ़ चला गया। जो नोट वाला काग़ज़ ख्वाजा साहिब से गिर गया था, वह ख्वाजा साहिब के पाठक सेवाराम के हाथ लगा और उसने मुझे दिखाया।

वीरवार का दिन था। मौलवी सिराजुद्दीन ने केस पेश किया—'टेकचन्द पेश है।'

साहिब ने पूछा—'तुमने यह किताब लिखी है ?'

मैं—'हां भगवन् !'

साहिब—'क्यों लिखी ?'

मैंने बताया—'डाके के दिन थे, रात को जागते थे। दिन को जो भी फ़रियादी बता जाते, वही रात को लिख लिया करता था।'

साहिब—'इतनी बड़ी पुस्तक लिखने का क्या भाव था ?'

मैं बोला—'एक तो इस तरह रात्रि बीत जाती थी, दूसरा आनेवाली सन्तानें पढ़ेंगी तो उनको पता मिलेगा कि किन आपत्तियों में कहाँ आश्रय मिलेगा और यह कि संसार में ऐसी आपत्तियाँ होती आई हैं।'

साहिब—'क्या पुस्तक के प्रकाशन का भाव था ?'

मैंने कहा—'नहीं श्रीमन् !'

साहिब—'तुमने लिखाया है कि अभी तक छपवाई नहीं ?'

मैं बोला—'श्रीमन् ! मैंने अपनी भाषा में उत्तर दिया था कि अभी नहीं छपवाई।

साहिब (मौलवी साहिब से)—'इसमें से कुछ घटनायें पढ़कर सुनाओ।'

साहिब ने ऐसे ही खोल कर दी तो वह ख्वाजा साहिब की कहानी थी। वह सुनाई, अपना नाम छोड़ गए।

दूसरी घटना जाम पीर बख्शकी थी। बड़ा स्याना ज़ैलदार था। पेट उसका बढ़ा हुआ था और घूँस भी बहुत लेता था। जो आए, जितना आए, जहाँ से आए, सब डकार जाता था।

साहिब के कान तो भरे जा चुके थे। सुनाने का भाव तो केवल यह था कि कौन-सी धारा में मुझे जकड़ा जा सकता है अब पुनः प्रश्न किया।

साहिब—'तुमने अफ़सरों अंग्रेज़ों के विरोध में राजकीय सेवक हो कर क्यों लिखा है ?'

मैं—'नहीं भगवन् ! किसी एक भी अफ़सर की निन्दा नहीं की है। उन सभी अंग्रेज़ अफ़सरों की अति सराहना की गई है। जिन्होंने प्रजा को बचाया, संवेदना की। मेरी पुस्तक का एक-एक शब्द सत्य है। यदि श्रीमान् इसकी जाँच करावें तो मैं ज़िम्मेदार हूँ। एक घटना भी असत्य सिद्ध हो तो फिर मैं दोषी हूँ।'

अब मेजर साहिब ने विधान उठाया, पृष्ठ पलटे, फ़ौजदारी तथा दण्ड-विभाग में कोई धारा न निकली जिस से मुझे बाँधा जा सके। अन्ततः बोले —'और तो हम कुछ नहीं कर सकते, राज्य-कर्मचारी होकर तुमने सरकार के विरोध में लिखा है इसलिए तुमको डिसमिस करते हैं।'

यह आज्ञा सुनते ही मेरी मुस्कराहट निकल गई।

□

ओ३म्

तीसरा अध्याय

व्यापार तथा योग

संवत् १९७२ में श्री दौलतराम जी भाईवाली में आढ़त की दुकान जतोई में खोली। मेरी दिनचर्या थी।

प्रातः शौच, स्नान, संध्या से निवृत होकर दुकान पर आ जाता, हवन करता—फिर शहर में रोगियों की सुध लेने जाता-- मृतक हो तो श्मशान तक जाता। लोगों को भी प्ररेणा करता। धार्मिक वार्तालाप उपदेश देना, आपसी झगड़े निपटाना।

एक वर्ष उपरान्त जो लाभ हुआ पूरा ब्योरा आयकर अधिकारी को स्वयं जा कर दिया। वह चकित हुए और हिसाब स्वीकार कर लिया।

पहला वर्षा-यज्ञ

इधर बर्षों से वर्षा की कमी हो रही थी जिससे महँगाई बढ़ती जा रही थी चारों और हा-हाकार मची थी। लोगों ने ख्याल किया कि यज्ञ किया जावे वर्षा-यज्ञ की विधि किसी को ज्ञात न थी। मैं भी नहीं जानता था। सामान्य यज्ञ करने उपरांत गायत्री से आहुति देते रहे जबतक कि सारा टीन घी का समाप्त न हुआ। यज्ञ उपरांत लंगर भी किया। ग़रीबों, दीन-दुखियों को पेट भर खिलाया। फिर मुझे टोबा टेकसिंह से जतोई जाना था। प्रभु-कृपा से मूसलाधार वर्षा हुई। टोबा से मुलतान तक बरसाते ही आए। परमेश्वर का धन्यवाद गाते रहे। प्रथम प्रयास था जिसमें सफलता रही। बहुत प्रसन्नता हुई। यह भावी कार्यक्रम का संकेत था।

मेरा संस्कार कराने में प्रवेश

प्रथम माघ संवत् १९७८ विक्रमी संक्रान्ति का शुभ दिन था। रात्रि समय आर्य समाज के मंत्री व कर्मठ व्यक्ति के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। जातकर्म-संस्कार के लिए मेरे पास आए। सस्कार तो मैंने कभी कराए न थे, परन्तु कुछ व्याख्या पढ़ी-सुनी थी; साथ हो लिया। शिशु की जीभ पर विधिवत् ओ३म् लिखा, यज्ञ कराया, कुछ व्याख्या भी की। फिर बच्चे का हाथ देखा; मुझे हस्तरेखा का ज्ञान था। महाशय मथुरादास जी को बच्चे के भाग्य के सम्बन्ध में बताया जो महाशय जी ने नोट कर लिया।

योग में प्रवेश

मैं स्वामी कृष्णानन्द जी की सेवा में पहुँचा और विनती की कि मुझे योग सिखावें। स्वामी जी ने कुछ सामान लिखवाया। एक दिन शिक्षा से पूर्व उपवास करने का आदेश दिया जो मैंने सहर्ष पालन किया।

महाराज की कुटिया में सोने के लिए तख्त बिछा था। नीचे गुफा थी जो गीली थी। रेत बिछा रखी थी। गुफा में ठण्डक अधिक थी। मार्गशीर्ष १९७९ विक्रमी बृहस्पतिवार का शुभ दिन था। अपने सामने बिठाकर स्वस्तिक आसन सिखाया आसन मेरा लग गया। गायत्री मंत्र को माथे पर लिखने की विधि सिखाई। यही प्रारम्भिक शिक्षा गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को स्थापित करनेवाली क्रिया थी। आज्ञा की कि 'इसे क्रम से बढ़ाते जाना, फिर कल बतावेंगे।'

मुझे ज्ञान न था कि गुरु कैसे धारण किया जाता है; न किसी से पूछ कर आया था। स्वामी जी ने कुन्नी (मिट्टी की हांडी) में पतली खिचड़ी बना रक्खी थी; आप भी खाई और मुझे भी खाने को दी। मैं ऐसा नीरस भोजन खाने का आदी न था। घर पर नमक मिर्च वाले स्वादिष्ट भोजन खाता था। ज्यों-त्यों करके खा गया।

सर्दी के दिन थे। लोग अपने घरों को चले गये। मुझे तो सेवा करने का ढंग न आता था; अज्ञानी-अनाड़ी शिष्य था। स्वामी जी ने कहा—'जाओ अपना नित्यकर्म जप इत्यादि करो!' स्वयं स्वामी जी ध्यान में बैठ गए।

योग-सम्बन्धी आदेश

१. जो सीखो, करो, उसे दूसरे पर प्रकट न करो!
२. तख्त या भूमि पर सोओ!
३. प्याज, लहसुन, गरम पदार्थ, कोष्ठ-वद्ध (कब्ज) करनेवाली व उत्तेजक चीजों का प्रयोग न करना!
४. चबा-चबा कर खाओ! खाते समय प्रभु का ध्यान रहे!
५. पेट खाली रखना, ठूँस-ठूँसकर न खाना!
६. अंगूठा, कनिष्ठिका, अनामिका के प्रयोग से प्राणायाम की विधि सिखाई कि प्राण लम्बा करने का अभ्यास हो जावे।
७. केवल योग विधि करो! गायत्री, सन्ध्या इत्यादि छोड़ दो!

स्वामी जी ने फिर 'झुग्गीवाला' को प्रस्थान किया।

मैं प्राणायाम का अभ्यास दिन में कई वार करता। श्वास दीर्घ करने लगा। मृत्यु का भय मन से निकाल दिया। अभ्यास पर ज़ोर दिया। जब स्वामी जी ने देखा तो पास कर दिया और प्रसन्न भी बहुत हुए। गुरु (फार्मूला) हाथ लग गया। पहली मज़िलें प्राणायाम की सीख लीं।

भोजन केवल एक छटाँक चावलों की खिचड़ी था। दूध फल के पास न जाता। शरीर कुछ कृश हो गया।

दोपहर को स्वामी जी को टैगोर की 'गीतांजली' सुनाता। वह तो आनन्दित होते, परन्तु मुझे कुछ समझ न आती।

अब मैंने छुट्टी माँगी। स्वामी जी ने कहा---'अभ्यास जारी रखना! दूध थोड़ा-थोड़ा पीते रहना!

मैंने कहा—'हफ्ते में दो वार सेवा में आया करूँगा।'

चलने से पूर्व की शिक्षा—(१) लाल इन्हीं गूदड़ियों में मिलेंगे, किसी साधु का तिरस्कार न करना!

(२) जब तक क़ैद है मज़हब की, तब तक होत न ज्ञाना।

(३) एक डायरी बना लो जिसपर अपने निशान तजवीज़ कर लो। रात को अपनी पड़ताल करो! विषय-सम्बन्धी तारीख़ डालो, फिर निशान लगाओ!

(४) आटा तोल कर खाना! दूध न पचे तो दूधिया बना कर पीना!

मैंने घर पहुँच कर ये बातें माता जी से कह दीं तो वह बड़े प्रेम से गायत्री जाप में भोजन बनाती। घर पर ही अभ्यास चलता रहा। प्रातः तीन बजे उठता। हठ योग की क्रियायें करके सवा तोला घी, पाँच काली मिर्चें, काल्पी मिश्री लेता। सन्ध्या-हवन इत्यादि करके दुकान पर जाता। फिर रात्रि को भी स्वामी जी के आदेशों का पूरा-पूरा पालन करता।

जीवन का पहला परिवर्तन

इससे पूर्व सायं काल की सन्ध्या वक्त पर न कर पाता था कि मित्र रुष्ट न हो जावें। आज चौधरी आत्माराम मेरे घनिष्ट मित्र थे। जब चार बजे तो मैंने उन्हें कह दिया कि मेरे अभ्यास का समय हैं। मैं उठ खड़ा हुआ। उसके बाद चौधरी जी स्वयं भी ख्याल रखते और समय पर स्वयं चले जाते।

प्रातः तीन से आठ, सायं पाँच से नौ बजे तक अभ्यास का समय २२ दिन स्वामी जी के सामने रहा, और घर पर भी वही अभ्यास चलता रहा। सप्ताह में दो बार अपना भजन-अभ्यास दिखाने स्वामी जी के पास जाता। वह कभी देखते, कभी निराश भी आना पड़ता। घोड़ा मेरे पास था; पाँच

मील का फ़ासला था; परन्तु गुरु जी के पास पैदल जाता-आता। एक दिन उन्होंने आदेश दिया कि अब हफ्ते में एक बार आया करो।

मेरी ग़लती यह थी कि गुरु जी के पास ख़ाली हाथ जाता था, इसलिए ख़ाली हाथ ही लौटता भी। परन्तु मैं भी लसूड़े की गुठली की तरह चिपटा रहा। जितना बन पड़ा, सीखता रहा।

मैंने घर में कह दिया था कि जब तक बच्चे हवन न कर लें उन्हें रोटी न दें। मैं प्रातः स्नान के बाद जब घर पहुँचा और देखा तो चारों पुत्र कुण्ड के गिर्द बैठे हैं ,माँ चक्की पीस रही है, हवन नहीं किया था। घी न था; बालक प्रतीक्षा में थे कि पिताजी घी लावेंगे। प्रातः किसी के घर से मांग कर लाना भी उचित न समझा। माँ ने कहा कि तुम्हारे भाई को चार दिन से कह रही हूँ; उसे काम से फ़ुर्सत नहीं मिली या याद नहीं रहा, नहीं लाया।

मैंने सामग्री से हवन करा दिया। अन्त में मैं जल में घी की बूँदें शेष डालता था, इससे फिर 'ओं तनूपा अग्नेऽसि तन्वं' मे पाहि' मंत्र बोलकर हाथ सेककर मुंह पर लगाता था। आज भी उसी अभ्यास से झट हाथ पानी में डाला और सेककर मंत्र पढ़कर मुंह पर लगाने लगा कि चारों बच्चे हँस पड़े। रोचक शिक्षाप्रद बातचीत इस प्रकार हुई—

मैं—'क्यों हँसे हो ?'

चारों जवाब देने की बजाय जोर से हँस पड़े।

मैंने मन में सोचा कि मेरी इस ठगी पर हँसे होंगे, इन्हें समझाना चाहिए। इसलिए मैंने कहा 'बोलो भाई, गर्मी हो रही हो तो तुम क्या करोगे ?'

एक—'पंखा करेंगे।'

मैं—'पंखा न हो, तो ?'

वे तो बच्चे ही थे, क्या उत्तर देते हँस पड़े।

मैं—'जो पंखा नहीं होता तो चादर या चोले के पल्ले से हवा की जाती है।' (करके दिखाई)

बालक ख़ुश होकर फिर हँस पड़े।

मैं—'यदि चोला न हो, गले से नंगे हों तो ?'

बच्चे फिर हँस पड़े।

मैंने धोती का पल्ला उठा कर हिलाके दिखाया और पूछा—'यदि धोती भी न होती तो ?'

बच्चे उत्तर न दे सके।

मैंने फिर हाथ हिलाकर दिखाया और पूछा—

'यदि हाथ से भी टुण्डा हो तो ?'

बच्चे उत्सुकता से मुझे तकने लगें।

मैंने मुँह से फूँक देकर दिखाया। बच्चे हँसते रहे। मैंने समझाया बच्चो ! हवन करना ज़रूरी है। घी नहीं तो सामग्री से, सामग्री भी न हो तो केवल समिधा से। इसी तरह मैंने बिना घी के हवन किया। हाथ सेकने की क्रिया भी की ताकि आदत, संस्कार न छूटें। बुरी आदत बुरा और अच्छी आदत अच्छा काम स्वभावतः करा देती हैं। ये क्रियायें जहाँ शरीर को लाभ पहुँचाती हैं, वहाँ अन्तःकरण में भावी जन्मों के लिए संस्कार भी स्थिर करती हैं।

बच्चे सन्तुष्ट हुए। अब वे स्कूल में पढ़ते थे, कुछ-कुछ समझने लगे थे।

मुझको गुरु जी महाराज के कथन से यह विश्वास हो गया कि सब कुछ अन्दर से हल होकर मिल सकता है। एक दिन प्रातः भजन में बैठा, एक अड़चन आई और वह हल न हुई तो धारणा कर ली कि जब तक हल न होगी, नहीं उठुंगा। सूर्य निकलने लगा। हठ समझो या दृढ़ता, अन्ततः अन्दर से आवाज आई—जागते हो या सोते ?

अन्दर ही जवाब दिया—जागता।

प्रश्न—जागृत में जीवात्मा कहाँ होता है ?

तुरन्त अन्दर आँख में···जालन्धर बन्द···ठोडी कण्ड-कूप में लगी हुई थी। ऊपर को उठा, त्रिकुटि में जम गया···और प्रश्न हल हो गया। बड़ी प्रसन्नता हुई। विश्वास भी जम गया।

दूसरी बार एक दिन प्रश्न हल न हुआ। उसी धारणा में बैठ गया। अन्दर से आवाज़ आई कि माता के चरणो में माथा टेक दो !

नीचे गया। माँ चक्की पीस रही थी। पाँव पसारा हुआ था। जाकर परों पर सिर रक्खा तो माँ ने आशीश दी कि 'भक्ति कायम होवी !' पहले तो कहा करती थी—'वड्डी उमर होवी ! बखत (सौभाग्य) लग्गी ! नूहरी-पोत्रे वाला होवीं !' आज यह मन पसन्द आशीश मिली तो आँखों में प्रेम-अश्रु आ गए।

दूसरे दिन मैं अभी भजन में था कि माँ गुरुद्वारे चली गई। जब मैं उठकर बाहर आया तो माँ दूसरी देवियों के साथ आ रही थी। मुझे शर्म हुई—कैसे माथा टेकूँ दूसरी ओर मुँह करके निकल गया।

सायं को जब भजन में बैठा तो ऐसे प्रतीत हुआ कि किसी ने गाल पर ज़ोर से थप्पड़ मारा; फटकार दी कि 'मूर्ख ! माँ के चरणों में सिर क्यों नहीं

झुकाया ? तुझे शर्म आती है ? यह शर्म नहीं, अभिमान है। माँ से बढ़कर तुम्हारे लिए कौन वन्दनीय है ? माता तो प्रथम गुरु है।'

मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। शर्म व अभिमान के भेद का भी पता चल गया।

अगले दिन जान-बूझकर देर से उठा और देवियों के साथ आती माँ के चरणों में माथा जा टेका। माता ने फिर कहा—'भक्ति कायम होवी !' नानीजी को माथा टेका तो उसने कहा—'शाहाँ दे सम्मुख होवें ! यह बात सारे शहर में फैली।

चौधरी ईश्वरदास को गुर्दे का दर्द पड़ा। मैं उनके पास बैठकर एकाग्र वृति से गायत्री-जाप करने लगा। चौधरी जी सो गए।

प्रातः दूसरे दिन भजन से निवृत होकर शाह जी की सुध लेने गया तो पता चला कि रात आराम से बीती। मैंने उन्हें कहा कि दुकान की वजाय मैं घर में यज्ञ करुँगा। थे तो वह सनातन धर्मी, परन्तु यज्ञ में आस्था थी, प्रसन्नतापूर्वक सब सामान जुटा दिया।

महाशय दयालचन्द को हठयोग सीखने का शौक़ हुआ, परन्तु शरीर में मोह के कारण सफल न हो पाए। उनके पास बहुत धर्म-पुस्तकें थीं, मैं उनसे लेकर पढ़ता था। पण्डित सातवलेकर जी की 'सन्ध्या-अनुष्ठान' पुस्तक पढ़ी। उसमें 'प्राणायाम गायत्री जाप द्वारा लिखा' पढ़ा । प्राणायाम द्वारा सिद्धियां बताई थीं। अब मैं खूब ज़ोर लगाने लगा। रात को केवल डेढ़ घण्टा सोता, अभ्यास करते-करते जालन्धर-सहित ८० प्राणायाम तक पहुँच गया। प्राणायाम का फल लिखा था 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणं' यह स्वयं देख लिया। पहले सन्ध्या के अर्थ बार-बार भूल जाते थे, अब सन्ध्या व हवन-मंत्रों में रस आने लगा। मर्म समझ आने लगा। मेरा सारा समय अब भजन-पाठ, स्वाध्याय में गुजरता था। व्यापार का काम एक घण्टा व्यापारियों के साथ ख़रीद के लिए जाता। अवस्था ऐसी हो गई कि दलाल जब 'हाथ पल्लो' देता मैं तुरन्त भूल जाता। शहर सुलतान के साहूकारों को चिट्ठी लिखते समय भाव आढ़तियों से फिर पूछता कि किस भाव पर सौदा तय हुआ।

उस समय एक प्राणायाम सवा मिनट का था। ८० प्राणायाम में सौ मिनट लगते प्रातः सायं ८०-८० प्राणायाम और गायत्री-जप। हवन में एक माला से बढ़ाते-बढ़ाते एक हजार आहुतियाँ प्रतिदिन पर पहुँच गया। सर्दी में सायं को छः बजे से नौ बजे तक, प्रातः डेढ़ बजे से नौ बजे तक का प्रोग्राम भजन का था। गर्मी में डेढ़ से पांच बजे तक, फिर स्नान

इत्यादि, पुनः सात से नो वजे तक। गर्मी में स्वाध्याय अधिक होता, सर्दी में भजन ज्यादा बनता था। श्रद्धा लगन तो बड़ी थी, परन्तु जेब तंग थी। आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। एक बूँद घी की एक आहुति में देता था।

पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की 'सन्ध्या योग' पढ़ने से श्रद्धा और भी बढ़ गई। गुरु जी महाराज ने पहले बताया था कि 'रोटी चबा-चबा कर खानी और साथ जाप भी करना। वृत्ति भोजन के चबाने में रहे और नाम रस से अन्दर जाए। दूध पानी भी घूँट-घूँट, परन्तु गुणों का चिन्तन करते हुए पीना। अन्न जो सामने आवे उसकी निन्दा कभी न करना!'

तबतक 'अन्नपत्ते' वाला मंत्र भी नहीं आता था। जो प्रार्थना उन्होंने फ़रमाई वैसी करता था। प्रार्थना इस प्रकार थी—

'हे दयानिधे प्रभो! मैं आपकी अति दया और कृपा है। मैं तो आप को कई बार भूल जाता हूँ परन्तु आप मुझे नहीं भुलाते,—ठीक समय पर उत्तम-से-उत्तम स्वादिष्ट पदार्थ प्रदान करते हो। धन्य हो प्रभु! धन्य हो! ऐसी कृपा करो कि इस भोजन में पाचन-क्रिया, भजन, ध्यान, आरोग्यता प्रदान करने की शक्ति हो! सूक्ष्म विचार, शुभ संकल्प, मेधावी बुद्धि पैदा करने वाला हो। जैसे आप मुझे नहीं भूलते, ऐसे मैं हर समय आपका चिन्तन करता रहूँ।'

मेरी यह हालत थी कि शास्त्र की बातों पर बिना तर्क अथवा युक्ति के सत्य मान कर दृढ विश्वास कर लेता था।

(१) साढ़े दस वर्ष की आयु में सुना—'गायत्री सब सागरों से पार करो।'

(२) १९७८ विक्रमी में लाला नन्दलाल से 'अयन्त इध्म आत्मा··· के अर्थ सुने। निश्चय हो गया कि यज्ञ से इतने लाभ होते हैं।

(३) गीता में पढ़ा भगवान् कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि यज्ञ 'इष्ट काम धुक्' है। निश्चय पक्का हो गया।

(४) सीमन्तो-नयन संस्कार में पत्नी को खिचड़ी में घृत में देखते पति पूछता है 'किं पश्यसि?' एकाग्र वृति से देखती देवी उत्तर देती है 'प्रजां पश्यामि'। ऐसा गृह्यसूत्र में है और महर्षि दयानन्द जी ने 'संस्कार विधि' में दिया है।

लाला चिमनलाल यजमान के घर यज्ञ-संस्कार था। दोनों श्रद्धालु भक्त थे। मैंने संकल्प किया कि इसकी सत्यता को परखना है। चमनलाल के पूछने पर मायादेवी ने कहा—पुत्र है गोरे रंग का है। ऐसा ही पुत्र उत्पन्न हुआ।

लाला दीवानचन्द टोबा टेकसिंह स्टेशन पर बुकिंग क्लर्क था । वह पार्सल भी बुक करता था, घूँस भी लेता था। उसके ज्येष्ठ पुत्र सत्यपाल का अन्न प्राशन-संस्कार होना था। दीवानचन्द समाज का मंत्री था । बड़ा सरगर्म वर्कर था। मुझे संस्कार कराने को कहा और मैंने स्वीकार कर लिया।

दीवानचन्द ने अपने घर में श्रद्धा से हवन-यज्ञ की तैयारी की। मैंने सोचा अब इसके सुधार का समय आ गया है। संस्कार में बच्चे को चावल खिलाये जाते हैं। अन्न सात्त्विक होना चाहिए बाबूजी का अन्न तो सात्त्विक नहीं था। महाशय मथुरादास ईमानदार सात्त्विक कमाईवाला था। चुपके से उसके घर से चावल मैंने बनवाए। इधर बाबू दीवानचन्द ने भी केवल बनवाए।

जब समय आया तो मैंने कहा—'मैं तो पाप-कमाई का अन्न नहीं खिलाऊँगा। मैंने शुद्ध अन्न बनवा रखा है। दीवानचन्द, तुम पर आध्यात्मिक कलंक आयु भर रहेगा कि मेरे पुत्र का अन्न-प्राशन बेगाने घर के अन्न से हुआ। तुमने सन्तान तो पैदा की परन्तु सात्त्विक आर्य नहीं बना सकते। तुम्हारा यह संस्कार जनता वैदिक धर्म, आर्य समाज पर क्या पड़ेगा? तुम समाज के कार्यकर्ता भी हो। तुम्हारी प्रारब्ध भोग तो प्रभु द्वारा निश्चित है। अच्छा यही है घूँस लेना छोड़ दो। सुधार का समय आ गया था। बड़ी खलकत थी। दीवानचन्द ने घूँस न लेने का व्रत लिया। हमेशा के लिए इल्लत मिटी।

एक दिन बृहस्पति को भाई चन्दुराम ने हुक्का भरने को कहा बृहस्पति ने इंकार कर दिया। चन्दुराम ने उसे बहुत मारा इसे देखकर मैं क्षुब्ध हुआ परन्तु ज़ब्त किया। फिर कोठे पर जाकर जप में बैठ गया । माँ ने पूछा कोई व्रत था। मुँह से निकला हाँ। फिर पूछा क्या अमावस्या थी। फिर मुँह से हाँ निकली। शायद उस दिन अमावस्या ही थी। मुझे अमावस्या पूर्णमासी का ज्ञान न रहता था। जब ज़बान से अमावस्या व्रत जप का नाम निकला तो उसी दिन से अमावस्या पूर्णमासी के जप आरम्भ हुए।

एक दिन भजन करते समय ध्यान में दृश्य आया कि शहर के पश्चिम कोने से चूहे निकलने व मरने लगे, प्लेग पड़ गई। कुछ दिन बाद महाशय मथुरादास का पत्र आया कि बख्शी रामनाथ और वह, गोजरा आर्य समाज के उत्सव से रात को गाड़ी से वापस आए, दो गाड़ियों का क्रास था—बाबू को टिकट देकर बाहर आए तो रामनाथ न था। बड़ी तलाश की परन्तु कुछ पता न लगा। घर वाले सख्त परेशान थे।

मेरा बखशी परिवार से प्रेम था, ऊपर चढ़ गया ध्यान में बैठा एकाग्रता वन गई। कुछ देर वहुत शान्ति रही उठा और उसी दिन उत्तर दिया कि रामनाथ की चिन्ता न करें वह अपनों के पास है और शीघ्र आपके पास पहुँचना चाहता है।

जैसे चिठ्ठी पहुँची रामनाथ भी घर पहुँच गया। पूछने पर उसने बताया कि महाशय मथुरादास मेरे आगे चल रहे थे। मुझे ख्याल आया कि हरिद्वार जाकर जप करुँगा। क्रास में गाड़ी खड़ी थी मैं उस में बैठ चला गया। हरिद्वार में जप में मन ही न लगा। उधर किसी शक्ति ने धक्का मारा और कहा तुरन्त घर जाओ। पाकिट में केवल दो पैसे थे, उदास हुआ—इतने में महाशय सुखदयाल कमालिया वाले मिले उसने उदासी का कारण पूछा, मैंने (रामनाथ) से कहा 'घर जाना है पैसे नहीं।' सुखदयाल ने रुपये दिये और मैं पहली ट्रेन से टोबा टेकसिंह आ गया। बखशी परिवार का मेरे प्रति प्रेम श्रद्धा और बढ़ गई।

गुरु जी महाराज पर्वत से लौटे झुग्गीवाला गाँव में गए। मिलने वाले वहाँ पहुँचे तो महाराज जी ने मेरा हाल पूछा। लोगों ने मेरी साधना आहार संयम, नेती धोती करना, भूमि पर सोना, निरन्तर लम्बे अभ्यास में जुटे रहने की प्रशंसा की तो बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन मैं भी गया। सारा हाल मुझ से भी पूछा। गद्‌गद् हुए कहा टेकचन्द ! यदि तू बच्चा होता तो तुझे छाती से लगा कर गोद में बिठा लेता। बड़ी आशीर्वाद दी।

धर्मचन्द शास्त्री ने समाज में स्वामी जी महाराज (मेरे गुरु जी) के विरुद्ध कुछ बोला—तो मुझे जोश आ गया। जब महाराज जी के पास गया तो उन्होंने कहा—टेकचन्द ! क्रोध जोश करना मूर्खता है। यदि तुमको सुनकर दुख हुआ है तो प्रभु दरबार में उसके लिए प्रार्थना करो कि प्रभु उसे सुमति प्रदान करें कि वह अपनी पढ़ी हुई विद्या से परोपकार कर सके। मैं भी ऐसे लाभकारी बन सकने वाले पंडित के लिए प्रार्थना किया करुँगा। यह है विधि अध्यात्म मार्ग वालों की—प्रति शोध अथवा जोश से अध्यात्म हानि वहुत हो जाती है।

यह सुनकर एक उपयोगी प्रयोग मैंने सदा के लिए गाँठ बाँध लिया।

व्रतों की ओर पग

मैं केवल दो घण्टे काम में लगाता वाकी समय अध्यात्म मार्ग में व्यय करता-अमावस्या-चौदश-पूर्णमासी महीने में तीन दिन व्रत करता—वृति टिकी रहती। हिन्दी प्रवाह रूप में पढ़ता और ग्रन्थ भी अनायास मिलते रहे।

मैंने प्यारालाल गिरधारीलाल आढ़तियों के चौवारे पर एक सप्ताह का केवल जल पर अदर्शन मौन व्रत किया। घूंट-घूंट कर नियमानुसार पानी पीता। मैं था कोरा अज्ञानी, जैसे गुरु जी को करते देखते वैसे श्रद्धा के बल पर करता रहा। प्रभु दया से सात दिन निर्विघ्नता से निभ गये। मेरी श्रद्धा व लग्न को बड़ा बल मिला।

टोवा में योग संबंधी कुछ ट्रैक्ट मिले। स्वामी लक्ष्मणानन्द जी लिखी पुस्तक 'ध्यान योग प्रकाश' मिला। उसमें लिखा था कि एक कुम्भक में ५०० वार ओ३म् का जाप हो तब प्राणायाम सफल होगा। उसका अभ्यास करने लगा और सफल हो गया। 'ध्यान योग प्रकाश' पुस्तक में वीर्य स्तम्भक प्राणायाम की विधि पढ़ी उसका अभ्यास किया संवत् २००२ तक उसका प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता रहा।

मुलतान गुरुकुल के उत्सव पर गया वहाँ रात्रि के शिव संकल्प के मंत्र सुने। बड़ी रुचि बनी। विशेषतः चौथे पांचवें मंत्रों पर मस्ती से गुन-गुनाता रहता।

एक गृहसूत्र पुस्तक में पढ़ा कि ऋणि यदि उऋण होना चाहे तो ढाक के पत्तों में से बीच वाले पत्तों का यदि यज्ञ किया जाये तो वह ऋण मुक्त माना जावेगा। अपनी सहायता के लिए चमनलाल को साथ लिया। रावी नदी के किनारे अब्दुल हकीम स्टेशन के पास जाकर ढाक का जंगल था वहाँ यज्ञ किया। यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञ शेष भी बाँटा।

प्रार्थना मंत्रों को बार-बार पढ़ते "य आत्मदा—अग्ने नय" मंत्रों में बहुत श्रद्धा हो गई। अर्थ रट लिए थे परन्तु रस न आता था अब 'राय' शब्द 'अग्ने नय' मंत्र में है उसके भाव स्पष्ट प्रतीत हुए। पहले तो केवल ज्ञान ऐश्वर्य आदि समझ रखा था। इसी तरह 'यज्जाग्रतो' वाले मंत्रों को पढ़ता अर्थ विचारता तो नित नए रहस्य खुलने लगे। यह भी पता न था कि मन विभु है या परिछिन्न। इन्हीं नए भावों को श्री मथुरादास जी को भी सुनाता। इससे मेरी रुचि उत्साह बहुत बढ़ गया।

हस्त रेखा का मुझ को बड़ा शौक था। अध्यात्म मार्ग में प्रविष्ट होने से अनेकों सूक्ष्म बातों का ज्ञान हो जाता। महाशय मथुरादास, बखशी चाननदास की हस्त रेखा देखने पर उन्हें वह बातें बताई जिन्हें केवल वह ही जानते थे।

सन् १९२५ में फरवरी मास में ऋषि दयानन्द महाराज की जन्म शताब्दी का मथुरा में महोत्सव था। पहले उत्सवों में कभी धन अभाव, कभी समयाभाव, कभी अभ्यास रत होने के कारण शामिल न हो सका था। यह उत्सव संसार भर के आर्यों का था। इसे तो देखना चाहिए। यह लालसा पैदा हुई, पर जाएँ कैसे ? चौधरी साहिबान मेरे पर लट्टू हो चुके थे। कई दिन अपने पास ठहराते, श्रद्धा व नम्रता से सेवा करते। मेरे मधुर और लुभावने स्वभाव ने सारे चौधरी परिवार में स्थान बना लिया कि छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष नियमपूर्वक चरण स्पर्श करते। प्रतिदिन मेरे सत्संग कथा में उपस्थित होते। सबने मांस आदि की प्रतिज्ञा लेकर त्याग कर दिया। यज्ञ हवन में भी लग गए। ब्राह्मणों से मूल्य पर जाप कराना त्याग दिया। गायत्री माता है उसे बेचने व खरीदने वाले दोनों नरक के भागी होगें। यह परमेश्वर का मंत्र है इसकी कीमत टक्कों में न आँकों।

जामपुर आर्यसमाज में प्रचार

जामपुर की आर्यसमाज पंजाब की एक शिरोमणि समाजों में से थी सभासद् प्रायः कर्मकाण्डी थे स्वाध्यायशील थे। महाशय गणेशदत्त मंत्री थे। शिवरात्री का सप्ताह मनाना था मुझ से प्रार्थना की। मैंने उत्तर दिया कि यदि मेरे नीचे दिए प्रश्नों को स्वीकारें तो मैं आ जाऊँगा। नियम इस प्रकार थे—

(१) सब सभासद् रात्रि को समाज मन्दिर में सोवें, जप प्रार्थना करके सोवें।

(२) प्रातः कीर्तन में सब शामिल हों किसी को घर से बुलाना न पड़े।

(३) शहर के बाहर तक कीर्तन करते हुए बाहर जंगल स्नान से निवृत होकर पुनः कीर्तन करते हुए आवें।

(४) समाज मन्दिर में हवन-यज्ञ हुआ करे।

(५) पिछले पहर हर एक मुहल्ला में बारी-बारी से बृहद यज्ञ और उपदेश हुआ करे।

(६) रात्रि को समाज मन्दिर में कथा हो।

प्रोग्राम सब के लिए नया था। परन्तु स्वीकारा गया। मैं चला गया। शिवरात्रि में अभी तीन दिन बाकी थे।

महाशय पुन्नूराम कालड़ा तम्बाकू का व्यापार करता था। उसके साथ घोड़े पर चढ़कर मैं जामपुर पहुँच गया। आर्य भाइयों ने हम दोनों का आदर सत्कार किया।

मैं तो यज्ञ और गायत्री का उपासक था। दोनों का खूब प्रचार किया। जितने सभासद् आते, उन्हें हवनकुण्ड के इर्द गिर्द बिठाता। सबसे आहुति दिलवाता। फिर नित्य-कर्म की महिमा ने उनके हृदय और मस्तिष्क में अपना ऐसा स्थान वनाया कि सबने प्रतिज्ञा की। प्रोग्राम इतना जटिल था कि मुझे अवकाश न मिलता।

पहले दिन का भोजन मंत्री गणेशदत्त के घर था। उनका दोमंज़िला मकान था। नीचे के कमरे में मट्टि-मधानी रक्खी थी परन्तु आदमी कोई नहीं था। मन्त्री जी ने कहा ऊपर चलो। ऊपर उनकी धर्मपत्नी ने नमस्ते की, फिर चौके में लग गई। मैंने वार्तालाप आरम्भ किया—

मैं—बस आप दो ही जीव हैं? वाल-बच्चे आदि?

मन्त्री—बाल-बच्चा अभी कोई नहीं।

मैं—तो क्या नीचे किरायेदार रहता है?

मन्त्री (कुछ देर चुप रहकर)—नीचे माताजी छाछ रिड़कती हैं। कहीं गई होगी।

मैं—तो क्या वह नीचे रहती हैं?

मन्त्री (दुखित होकर)—हाँ, थोड़े दिनों से।

मैं—तो केवल रहती हैं या भोजन भी अपना जुदा वनाती हैं?

मन्त्री—जुदा वनाती हैं।

मैं—आप कितने भाई हैं?

मन्त्री—बस मैं अकेला ही हूँ।

मैं—तव तो बहुत आश्चर्य की बात है कि जिस माता ने आप जैसा पुत्र उत्पन्न किया, उसे आपका सुख पिछली आयु में लिखा नहीं। उसकी तो एक ही आँख आप हैं और फिर वह आँख से जुदा हो, क्या कारण?

मंत्री—क्या कहूँ! माता जी मुझसे वहुत प्रसन्न हैं परन्तु सास-बहू की नहीं बनती। क्या करुँ?

मैं—माता जी को ऊपर बुलाओ! मैं आपके घर का अन्न नहीं खाऊँगा। जो वहू अपनी धर्ममाता को सुख नहीं दे सकती उसके हाथ का भोजन मुझे अनुकूल नहीं पड़ेगा।

देवी पास बैठी चौके में सुन रही थी। माता जी ऊपर आ गईं—साक्षात् धर्म की मूर्ति! सुशील स्वभाव देखकर मैंने आदर से नमस्ते की और कहा।

मैं—माँ जी! यह क्या बात है? मेहमान दर पर और आप पीठ कर गईं। (कुछ जवाब दिया जो याद नहीं) सारांश यह कि दोष बहू का था। माता मट्टिमधानी छोड़ गई थी कि पुत्र का गिला न हो।

मैं—महाशय गणोशदत्त जी ! आप इकलौते पुत्र हैं, माता-पिता के आशीर्वाद के बिना अथवा माता के शाप से सन्तान कभी नहीं मिलती। मैं तहसीलदार का मुहर्रिर जुडीशियल था। १९१३-१४की बात है, ग्रीष्मऋतु थी। दोपहर को कचहरी से निवृत्त होकर घर रोटी खाने आया तो माता जी ने शिकायत की कि तुम्हारी घरवाली ने मुझे अपशब्द कहे हैं। शायद समझती होगी कि मेरा पति कमानेवाला है।

एक कचहरी से थका आया, धूप में आया, भूख लगी थी माँ; जो मेरे लिए देवता थी उसका अपमान सुनकर धर्मपत्नी को एक थप्पड़ मारा कि जिस माँ ने अपना पेट काटकर पाला अपना सुख गँवांकर मुझे सुखी रक्खा उसका अपमान तू करे? सुन लो···जिस दिन फिर ऐसी शिकायत मिली तो मैं घर त्याग साधु बन जाऊँगा···तुम अपने-आपको विधवा समझ लेना···माँ अपने पुत्र को मरा जान ले।

यह बात सुनते ही मेरी घरवाली मेरे माता जी के पाँव पड़ गई, क्षमा माँगी और फिर मरते दम तक उनका मनमुटाव कभी न। हुआ घर स्वर्ग बन गया ! अब मेरी माँ बहू को याद करके रोती हैं।

इन बातों का मन्त्री पर प्रभाव पड़ा। उसने भी कहा कि मैं भी ऐसी ही प्रतिज्ञा करता हूँ। देवी ने अपने पति के मुँह को देखा। उसे सच्चाई प्रतीत हुई तो उसकी अश्रुधारा बह निकली। माता जी भी रो पड़ीं। देवी ने माता के चरणों में सिर रख दिया और आँसुओं से उसके पैर भिगो दिये सिर ही न उठाती। सच्चे हृदय से पश्चात्ताप हो रहा था। तब माता ने देवी को उठाया, गले लगाया, चूमा, आशीर्वाद दिया। उसी समय नीचे से सारा सामान ऊपर लाया गया। हर्ष-प्रेम की छटा खिलने लगी।

बहू ने रोटी बनाई। माता जी ने बलिवैश्वदेव की आहुतियाँ चूल्हे में दीं और भोजन कराया।

बस, पहली बार जो थाली में आ जाता उससे अधिक न लेता। सर्दी की ऋतु थी। गरम रोटी एक-एक करके दी जाय ऐसा शिष्टाचार, रिवाज था, परन्तु मैं एक लेकर बस करता।

मन्त्री ने पूछा—एक रोटी ही आपका आहार है ? दूध भी नहीं पीते ? चार बार बोलना पड़ता है, कैसे निभेगी ? मैंने उनसे मनवाया कि बात प्रकट न करना और बताया कि साधना का जीवन है, निष्ठा यही है जो एक बार थाली में आ गया उसी पर संतोष करना। प्रभुदेव तृप्त भी कर देते हैं।

एक सप्ताह का प्रोग्राम बहुत अच्छा निभा।

भाषण-शैली

उपदेश मुलतानी भाषा में होते जो सबकी मातृभाषा होने के नाते समझ में आते। लोग सादामिज़ाज थे। उन्हें किस्से-कहानियाँ पसन्द आती हैं तो मैं भूमिका में कोई कहानी सोचकर आता व कहता, फिर मूल विषय पर आता। इस तरह उपस्थिति बढ़ती गई। सनातनधर्मी भी आते थे।

अंतिम दिन मैंने सबको कहा— भाइयो ! अब तैयार ! हो जाओ आपको कुछ देना होगा। 'बिना किले पटाबी' मैं नहीं जाऊँगा। यह मुलतानी कहावत है मजदूरी-दक्षिणा लेने की । आप कहोगे कि 'एह भुत्थि कन्ध वांगू गल लगदे' यह भी मुलतानी भाषा है (पुरानी खाई हुई दीवार जो आदमी पर गिरे)।

यह सुनकर लोग हँस पड़े, कहा कि माँगो; दिल खोलकर माँगो ! उन्हें क्या समझ थी कि क्या माँगेगा ?

मैं—एक हजार गायत्री जप, दैनिक हवन, बलिवैश्वदेव यज्ञ। सबने खुशी-खुशी प्रतिज्ञा कर ली।

हकीम खिलन्दाराम का सुधार

हकीम खिलन्दाराम रोज़ सत्संग में आता था। ध्यानपूर्वक सुनता। उसने अंतिम समय के भोजन के लिए कहा, श्रद्धा देखकर मैंने मान लिया। बाद में पता लगा कि हकीम मांसाहारी है । जब बुलाने आया तो चले गए, बैठाया, थाली सामने आई।

मैं – अब आपकी आशा पूरी हुई। हमें आज्ञा दीजिए।

हकीम—भोजन तो आरम्भ नहीं किया, आशा कैसे पूरी हुई ? सब चीज़ सात्विक हैं। पुत्री गायत्री जाप में रोटी पका रही है।

मैं –आपकी श्रद्धा पर बलिहार हूँ, परन्तु क्षमा माँगता हूँ ।

हकीम—कारण तो बताओ ।

मैं—आपको दुःख होगा। आप साहूकार प्रतिष्ठित हैं, मैं तो छोटा आदमी हूँ। आपको शायद क्रोध आए।

हकीम—कदापि नहीं, अवश्य बतावें।

मैं—आपके घर में मांस बनता है, आप मांसाहारी हैं।

हकीम—हाँ, खाता हूँ, बहुत खाता हूँ, स्वयं बनाकर खाता हूँ। मैंने श्रद्धा से आपके व्याख्यान सुने, सब के सब क्रमवार सुना सकता हूँ। अच्छा, यदि मांसाहारी के घर आप नहीं खाते तो मैं हमेशा के लिए छोड़ता हूँ।

हाथ में जल लेकर 'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि' वाला मन्त्र पढ़ा और हमेशा के लिए मांस त्यागा। उसका सुधार हुआ। फिर मैंने भोजन खाया।

१०-१२-२८ को बृहस्पति की मृत्यु के बाद उसे डेढ़ सौ रुपये मासिक पर सब-इन्स्पैक्टर के तौर पर पुलिस में भर्ती होने का बुलावा आया।

माता जी बहुत रोया करती थीं। मैंने माता जी को कहा—'माँ! रोती क्यों है? आँखें क्यों खराव कर रही है? जो प्रभु-इच्छा होती है, उसी में भलाई होती है। अब तू देख ले कि चन्दूराम की सगाई टूट गई। मैंने कहा था इसी में भलाई है। प्रभु तो जानते थे कि चन्दूराम ने साल के अन्दर मर जाना है। यदि विवाह हो जाता तो नववधू विधवा होकर तेरे दर पर होती, तुझे भी दुःख होता और वह भी रण्डापा काटती।' मैंने समझाते हुए कहा—'इसी तरह बृहस्पति डेढ़ सौ रुपये पर नौकर हो जाता, हमें भूल जाता, या रिश्वत लेने लग पड़ता तो हमारा अपयश होता। हमें न पूछता, तो भी हम दुःखी होते।'

माता को सान्त्वना मिली।

अमावस्या से पूर्णमासी तक का व्रत

पूर्णमासी के एक दिन पूर्व अन्तर्प्रेरणा क्या ही आनन्ददायक हुई! कर्म-मीमांसा का एक संक्षिप्त-सा, परन्तु पूर्ण सन्तोषजनक चित्र मेरे सामने आया—

'तुम कर्महीन नहीं हो! न वर्तमान संकट-काल तुम्हारे किसी पूर्व-पाप का फल है। तुम्हारे कर्म वहुत अच्छे हैं। फल जाग रहा है। कर्महीन वे होते हैं जिनकी बलवान् आवाज़ निर्बल हो जाती है, जिन्हें अपने पास कोई बिठाना पसन्द नहीं करता और जिनकी आवाज़ कोई नहीं सुनता। तुमको सब चाहेंगे और तुम्हारी आवाज़ को सुनेंगे।

तुम अपना नाम अब प्रभु आश्रित रख लो और दण्ड लेकर प्रचार करो। बस, और तुम्हारा कोई काम बाकी नहीं!'

अन्तिम वाक्य इतने बलपूर्वक अन्दर से उठे और सुनते ही ऐसा आह्लाद उत्पन्न हुआ कि वह लिखने और वर्णन करने में नहीं आ सकता।

□

चौथा अध्याय

अफ्रीका यात्रा

मैंने एक दिन व्याख्यान में कहा कि भगवान् के पास कुछ-न-कुछ का खाना (कोष्ठक) भी है। तो एक मित्र ने पूछा—'वह कैसा होता है ?'

मैं बोला —'जब मैं नैरोबी पहुँचा था, रविवार के दिन आर्यसमाज मन्दिर में गया। सब लोग नीचे दरी पर श्रद्धापूर्वक बै`थे। मैंने देखा कि मन्दिर के विशाल भवन में एक बेंच रक्खा है और एक नवयुवक अकड़ा हुआ पाँव पसारे बैठा है···पतलून-कोट आदि पहने हुए है···हैट बेंच पर पड़ी है। मैं समझा कोई बड़ा अधिकारी होगा। अधिवेशन समाप्त हुआ तो उठा और देखा कि उसे नौकर उठाकर समाज-मन्दिर के सामनेवाले मकान में ले गए हैं। मैं उधर गया तो महाशय बद्रीनाथ जी ने अन्दर बुलाया। मैं अन्दर गया तो महाशय जी ने बताया कि 'यह मेरा लड़का है, २८ वर्ष आयु है, कमर टूटी हुई है, गर्दन मुड़ी हुई है, ढीली इतनी कि सिर को थाम नहीं सकती। टाँगें-पाँव लूले हैं, जिह्वा तुतलाती है, बहुत देर बाद कोई शब्द निकल पाता है। जन्म से यही दशा है। शैशव-काल में तो माँ पकड़कर मल-मूत्र धोती और खिलाती थी, अब नौकर ये कार्य करते और कपड़े पहनाते हैं। शरीर के किसी भी अंग में सत्ता नहीं है। बेंच पर बिठाते हैं तो चमड़े की पट्टी से बाँध रखते हैं। क्या करें ! परमेश्वर की लीला है।

महाशय बद्रीनाथ का वह इकलौता पुत्र है। बहुत सम्पत्ति है, मगर यह चैक कैसे लिखेगा ? कोई लूट ले जावे तो पकड़ नहीं सकेगा। मनुष्य कर्म के लिए पैदा हुआ है अवश्य, परोपकार के कर्म करने चाहिएँ।

मैंने ३७ दिन का अदर्शन मौन व्रत वर्मा जी के घर फलाहार पर किया। 'पैग़ामे-रहबर' और 'गायत्री-रहस्य' पुस्तकें पहले लिख चुका था। उस व्रत में 'योगदर्शन' कण्ठस्थ कर लिया और 'कर्म-भोग-चक्र' पुस्तक लिखी।

कांशीराम की ४-५ वर्ष की पुत्री को निमोनिया हो गया। कांशीराम को वह बहुत प्यारी थी। हवन-मंत्र उसे याद थे, उर्दू-हिन्दी या अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं का कुछ बोध था, आज्ञाकारिणी थी। लाला कांशीराम ने पुत्री

के रुग्ण होने की सूचना तक मुझ न दी, मगर सेवा में भी नाग़ा न किया। दैववशात् लड़की चल वसी, फिर भी सेवा पूर्व प्रकार होती रही। एक दिन पूर्व लिखा कि सावित्री को निमोनिया हो गया है। दूसरे दिन सेवा पर आया तो शोक-समाचार लिख दिये। उसकी इस प्रकार की सेवा पर मुझे आश्चर्य हुआ। उसके घर पर सब रोते-धोते रहे, परन्तु कांशीराम ने किसी संकेत से भी सेवा में आनाकानी न की। दिन वीत गए।

अन्तिम दिन पूर्णमासी का था। व्रत समाप्त हुआ। मास्टर जी आदि सव आए। यज्ञ हुआ। यज्ञशेष कांशीराम अपने घर से बनवाकर लाया।

अफ़्रीका से मैं, कांशीराम, उनकी धर्मपत्नी समुद्री जहाज़ से वम्बई पहुँचे। होटल में ठहरे। शाम को सैर करते आर्यसमाज चले गये। वापस होटल में आए तो अन्दर नींद न आए। बाहर देवी साथ है, कैसे सोवें ? जव वाहर आकर देखा तो सैंकड़ों निराश्रय व्यक्ति पेड़ों के पास राजमार्ग के किनारे सोये हुए थे। बेचारों को सिर छिपाने के लिए कोई स्थान न मिलता था।

दूसरे दिन एक और दृश्य देखा—भोजन खाकर कुत्ते के लिए जो ग्रास फेंका तो बीसियों स्त्री-पुरुष-बच्चे ग्रास पर झपटने के लिए खड़े थे। ग्रास नाली में जा पड़ा तो उसे भी उठा-धोकर एक ने खा लिया। कितनी ग़रीबी ! प्रभु दया करें !

अफ़्रीका से लौटने पर घर की स्थिति देखी कि किस कष्ट में माता जी और नानी जी ने समय काटा होगा। माता जी का धैर्य धन्य है जो सब सन्तान से भरे घर, दोनों बहुओं के वियोग, नवयुवक पुत्र और वृद्धावस्था की लाठी पोते का आँखों के सामने सदा का वियोग, समुद्र पार पाँच हजार मील दूर पोतों का आँख से ओझल होकर पढ़ना और सफ़र, ऐसी विपदा की घड़ियाँ गुजारकर भी प्रभु का धन्यवाद करना, उनकी तनबीती का उनके मन को ही ज्ञान था !

मेरे जन्म पर तो माता-नानी को वड़ी प्रसन्नता हुई होगी कि उन्हें प्रभु ने लाल दिया, परन्तु उन्हें क्या पता था कि यह लाल भाग्य का ऐसा धनी होगा जो कंगाल-बेहाल कर देगा और सारी आयु विपत्ति और दुःखों का जंजाल-ववाल रहेगा ! धन्य थीं मेरी माता व नानी कि मेरे कारण सदा विपदा सहती रहीं, फिर भी मुझपर सदा प्रसन्न रहीं। अपने आशीर्वाद की धाराओं से मुझे चमकाती भी रहीं। वास्तव में प्रभुदेव ने उन्हें एक

दात प्रदान कर रक्खो थी, जिससे उन्होंने निर्वाह किया । माता जी के हाथ में बरकत थी । वह सदा प्रातः जागते ही अपने दायें हाथ को चूमती थीं ।

माता ने हाथ से जो थोड़ा-बहुत कमाया, उसी में इतनी बरकत थी कि कभी किसी की पराधीन नहीं हुईं, किसी के आगे हाथ नहीं पसारा । नानी जी के हाथ में ऐसा त्याग था कि जो कुछ परिश्रम से अथवा किसी और साधन से प्राप्त होता, वही प्रायः सेवा-सहायता में लगा देतीं । निर्धनों को दान-पुण्य और बच्चों की सहायता में ख़र्च कर देतीं । प्रभु पर उन्हें पूर्ण विश्वास था; कल की उन्हें चिन्ता न थी । मैंने स्वयं बचपन में और उनकी वृद्धावस्था में भी देखा कि दोहती के दोहते, दोहती की पोती आदि के विवाहों में भी अपनी मर्यादा का पूरा पालन करती थीं । जब भी कोई बच्चा सामने आता तो उसे गाँठ से कोई खाने की चीज़ या पैसा देतीं । जब भी कोई चीज़ खाने को मिलती तो स्वयं कम खातीं, बच्चों के लिए बचा रखतीं कि कहीं वे खाली हाथ न जावें ।

उच्च शरीफ़ में प्रचार

मैं उच्च शरीफ़ में गया । समाज के मुख्य कार्यकर्ता महाशय धनुराम और गोविन्दराम थे । दोनों श्रद्धालु थे । दो उपदेश सुनने के बाद अध्यात्म-मार्ग में विधि से चलने के लिए इच्छा प्रकट की । गायत्री-जप विधि-सहित सिखाया । जब उन्होंने जाप शुरू किया तो उन्हें बहुत रस आने लगा । श्रद्धा बढ़ गई । उच्च शरीफ़ के समाज का संगठन और दैनिक सत्संग प्रसिद्ध था । प्रायः सब सभासद कपड़ेवाले थे; एक ही बाजार में दुकानें थीं । तनिक भी ईर्ष्या न थी । एक ही व्यवसाय और इतना प्रेम ! यह एक निराली बात देखी !

मैंने धारणा बना ली कि एक सब्ज़ी दाल से ही भोजन करूँगा । जिस यजमान के घर जाता तो कहता कि 'इनमें से आपकी जो खुशी हो, एक रख दें और बाकी उठा लेवें । मैं तो एक से ही खाऊँगा ।' जब वह कहते कि आप जो चाहे रख लेवें, तो मैं सबसे सस्ती वस्तु रख लेता । इस नियम पर दृढ़ रहा और इस धारणा से मुझको बड़ा लाभ हुआ । अपने मेहमानों को भी एक ही दाल अथवा सब्ज़ी से रोटी खिलाता और कहता—'भाई साहिब ! बुरा न मानना, मैं अपने घर में अपनी माता जी के पवित्र कर-कमलों का बनाया भोजन सदा प्रसाद समझकर खाता हूँ । आप भी ऐसा ही समझें ।' इस तरह ग़रीब स्थिति के लोग भी साहस से भोजन कराने लगे ।

शहर सुल्तान में एक वर्ष

व्रत के लिए एक कुटिया बाग़ में तैयार की गई। यह कुटिया संगतरे के बाग़ में थी। शहर से बाहर थी। श्रावण में तैयार हुई; लिपाई अभी सूखी न थी; चौदस का दिन था।

काठियावाड़ से जब वापस आए तो मेरे पास २३ रुपये चार आने छः पाई थे। बस, इसी पर वर्ष गुज़ारना है। देनेवाले बहुत हैं, पर लेनेवाला इन्कार करता है। निर्णय हुआ कि एक गाय चौधरी जी कूप पर रक्खेंगे जो वहाँ का चारा खाएगी। मुझे आधा सेर दूध, दो पैसे का फल व सब्ज़ी इत्यादि रोज़ सेवक पहुँचावेगा और कोई अन्दर न जाएगा, द्वार बन्द रहेगा।

मेरा कार्यक्रम प्रातः-सायं चारों वेदों का स्वाध्याय व जप-यज्ञ था। मेरी धारणा थी एक करोड़ गायत्री का जाप, दस लाख गायत्री की आहुति और चारों वेदों के यज्ञ की, इसलिए समय निश्चित कर लिया। प्रारम्भ से ही मैं शरीर की ओर ध्यान न देता था। मेरी दृढ़ धारणा थी कि भक्ति में बल है। निर्धन-से-निर्धन आदमी भक्ति कर सकता है। कोई विशेष खर्च नहीं आता। परन्तु प्रकृति के नियमों से अनभिज्ञ था, क्योंकि उसके नियमों में प्रभु हस्तक्षेप नहीं करते।

भाद्रपद में खजूर बहुत महँगी थी—एक पैसे की आध पाव। अनार भी महँगे थे। इसलिए वह कभी अनार और कभी सब्ज़ी लाते।

मुझसे एक भूल हो गई कि मैं खजूर के तीन भाग कर लेता था। एक भाग प्रातराश में लेता, दूसरा भाग दोपहर को सब्ज़ी के साथ, और तीसरा भाग दूध के साथ लेता था।

भोजन के समय दृढ़ संकल्प से प्रार्थना करता था कि 'भगवन्! इसी से मेरी तृप्ति हो जाए' और प्रभुकृपा से तृप्ति हो भी जाती। दिन-भर जप करता—३५-४० सहस्र प्रतिदिन। पहले जाप पूरा करता, फिर स्वाध्याय।

जाप करने का स्वभाव मेरा शुरू से ही था और जिस दिन नियत संख्या से ज्यादा जाप हो जाता तो बड़ा खुश होता। सब थकान दूर हो जाती, जैसे कि रक्त में ताज़गी और शरीर में बल आ गया हो। यह ज्ञान न था कि यह प्रसन्नता शराब के नशे और शक्ति जैसी है।

प्रभु की पहली दात—विश्वास

कुटिया के अन्दर थला था और बाहर तख्तपोश रक्खा था। दिन को अन्दर थले पर और सायं को तख्तपोश पर बैठ कर जाप करता था। कृष्ण-पक्ष शुरू हो चुका था। सायं को मैं भ्रमण भी तो करता था, उसी चमन में, अतः लैम्प जलाकर भ्रमण करता ताकि सर्प आदि का भय न रहे। कई दिन तख्तपोश पर नींद न आई; क्योंकि मच्छर तंग करते थे। एक रात एक काला-मोटा साँप दीवार के ऊपर मेरे तख्त के पास से जहां मेरे पाँव थे, फुंकारता हुआ चढ़ गया। ध्वनि से चौंककर मैंने उठकर देखा तो सर्प उस समय तेज़ी से आगे चला गया।

कुछ दिनों के बाद एक व्यक्ति, अँधेरी काली रात में दूर जंगल में गाता हुआ शहर को जा रहा था।

मन में विचार आया कि तुझसे तो एक जाट गँवार भी अच्छा है जिसे अपने जीवन के लिए प्रभु पर पूरा विश्वास है। पता नहीं कहाँ से चला है! इतनी रात बीत गई, जंगल ही जंगल है, कोई लैम्प पास नहीं। ऐसे प्रतिदिन सब अनपढ़ गँवार शहर में दूध पहुँचाने आते हैं और अँधेरी रात में जाते हैं। कोई लैम्प उनके पास नहीं होता, केवल प्रभु-आश्रय पर ही चलते हैं और मैं—प्रभु आश्रित कहलाता हूँ! पढ़ा-लिखा हूँ, २४ घण्टे उसी प्रभु की शरण में रहता हूँ, पर मुझे विश्वास नहीं कि रक्षक तो मेरे साथ है, या मैं अपने रक्षक की शरण में। उस दिन सर्प ने भी तो मुझे कुछ नहीं कहा!

बस; यही पहली दात थी उस प्रभु की—विश्वास। मैंने लैम्प अन्दर रख दिया, न सायं को जगाता, न शौच के लिए जंगल में साथ ले जाता। वर्षभर लैम्प पड़ा रहा। बड़ी निर्भयता से अँधेरी रात्रि में आनन्दपूर्वक टहलता था।

अधिक जप, प्राणायाम, स्वाध्याय के हिसाब से ग़िज़ा अपर्याप्त थी। मस्तिष्क कमज़ोर हो गया। कई-कई प्रकार की आवाज़ें सुनाई देतीं। मुझे अब व्रत पूरा करने का तो ढाढस बँध गया था, परन्तु मस्तिष्क को यह क्या हो गया? यह विचार प्रबल होता गया और भगवान् को धन्यवाद किया कि शीघ्र पता चल गया। उसके बाद मैं किसी ऐसी आवाज़ का विश्वास न करता। उसकी एक कसौटी बना ली और वह यह कि 'ओ३म' अथवा

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

मन्त्र का अर्थसहित मन में उच्चारण करते और देखते कि इसे ठीक उच्चारण किया है और ठीक-ठीक सुना है तो फिर समझ लेता कि मुझे मस्तिष्क का रोग नहीं है, केवल कमज़ोरी है।

अब खजूर की ऋतु समाप्त हो गई। सब्ज़ी भी खत्म हो चुकी थी। बेचारा चौ० भुवानीदास दूर-दूर के कुओं पर जाकर तलाश करता था। भोजन की अत्यन्त कमी, दूध का अपचन, घी-फल-मेवा का प्रयोग न करना और दिन-रात के जाप ने मस्तिष्क को नितान्त बलहीन बना दिया, परन्तु मैंने इन कारणों की ओर ध्यान ही न दिया।

एक दिन सम्भवतः संक्रान्ति थी। मैं चनाव नदी पर स्नान करने चला गया। सर्प आदि का अब भय नहीं। जंगल की तरफ़ नीचे श्मशान की ओर से गया जहाँ कोई आता-जाता न था। सुनसान स्थान था। अभी लोग भी सोए हुए थे। स्नान करके अँधेरे-अँधेरे अपनी कुटिया पर पहुँच गया। हवन किया। सर्दी में ज्वर हो गया। कान में दर्द शुरू हो गया। अब चिन्ता हुई कि व्रत तो अदर्शन है; रोग की प्रतिक्रिया कैसे होगी? न स्वयं हकीम, न रोग का निदान कर सकूँ। पीड़ा को भरसक सहन किया, पर कब तक! दर्द बढ़ता गया। सिर चकराने लगा।

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुखं मेषाय मेष्यै ।। (यजु ३।५९)

'भगवन्! आप दवाओं की दवा हो-गौओं, घोड़ों और पुरुषों की। इन सब पशुओं तथा भैंस-भेड़ आदि द्वारा आप ही सुखी करो!' या तो अपने-आप रोग को दूर करो अथवा जिस वैद्य को तू चाहे ला दे। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मैं मर जाऊँगा, परन्तु अपने हाथ से अपने रोग की सूचना नहीं दूँगा। तू जाने तेरा काम जाने! मुझे इससे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि मेरे प्राण तेरी शरण, तेरे पवित्र वास में निकल जायँ।

मैं ऐसी प्रार्थना सच्चे दिल से कई बार दिन-रात में करता रहता था। उस प्रभु से, जो आत्मज्ञान का दाता और शरीर, आत्मा तथा समाज को बल देनेहारा है, जिसकी विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका सत्यस्वरूप प्रत्यक्ष शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष-सुखदायक है और जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना मृत्यु आदि दुःखों का हेतु है।

मेरा यह निश्चय था कि वह प्रभु सबकी आत्माओं में ज्ञान देते हैं और बल भी स्वयं ही देते हैं। इसलिए इन दोनों चीज़ों के लिए मैं उसी प्रभु से पुकार, फरियाद और अपनी ज़ारी (क्रन्दन) करता था।

ऐसे चार दिन बीत गए। कान अन्दर से सूज गये। दर्द के साथ शाँ-शाँ होती रहती। घण्टे-घड़ियाल की-सी ध्वनि गूँजती। रात्रि को ज्यों ही सिर तकिये पर रखता और घड़ियाल-से बजने लगते तो नींद न आती। तब मैं जाप में जुट जाता, इस भाव से कि मरना तो है ही, जाप तो हो जाय!

मैंने गुरु जी महाराज को पत्र लिखा। उन्होंने उत्तर लिखा कि मुझे भी ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस व्रत में मृत्यु हो जावेगी। मैं आने को तैयार हूँ यदि आप मौन भंग करके मेरे साथ बात करें। तुम्हारा उत्तर आने पर मैं रवाना हो जाऊँगा। वैसे मैं यू० पी० जाने वाला हूँ।

जब उनका पत्र आया तो मेरी चेतना स्वस्थ थी। 'य आत्मदा' की कसौटी मुझे मिल चुकी थी। गुरु जी का पत्र पढ़ते-पढ़ते अन्दर से निश्चयात्मक आवाज़ आई कि तुम नहीं मरोगे।

पूज्य गुरु जी महाराज जब मेरे प्रेमी लाला दयालदास सर्राफ लाहौरवाले के मकान पर गए तो लाला जी ने मेरा समाचार पूछा—'व्रत का क्या बन रहा है? कोई पत्र आपको आया है।'

गुरु जी—'हाँ (पत्र आगे करते हुए) यह पत्र आया है। मैंने भी भय अनुभव किया है परन्तु उसे शर्त लिखी है, यदि उसे स्वीकार हुई तो जाऊँगा, वरना नहीं।'

यह बात मेरे प्रेमी को बहुत बुरी लगी। चिन्ता भी हुई। बोला—'स्वामी जी! ऐसे शिष्य के लिए शर्त मनवाकर जाने की बात अच्छी नहीं है। आपको अभी टिकेट ले देता हूँ, आप प्रस्थान करें।'

गुरु जी ने स्वीकार कर लिया। लाला दयालदास ने टिकट ले दी और गुरु जी को रवाना कर दिया। गुरु जी ने गुप्त तो क्या रखना था, सब जगह ढ़िढोरा पीट दिया। टोबा, झंग, अलीपुर, जतोई, सब जगह लिख दिया कि शहर सुलतान जा रहा हूँ, टेकचन्द सख्त बीमार है, मृत्यु का भय है, तुम भी शहर सुलतान आ जाओ!

मैंने लाला नन्दलाल जी को कह दिया था कि मौन कदापि भंग नहीं करूँगा, चाहे मृत्यु भी हो जाय। लाला नन्दलाल जी के परामर्श से उसी समय गुरु जी को तार दिया कि 'आप आने का कष्ट न करें और निःसंकोच यू०पी० जाँए। मैं भय से बाहर हो गया हूं।' किन्तु तार पहुंचने से पहले ही गुरू जी रवाना हो आए थे। हाँ लाला दयालदास को इससे कुछ तसल्ली हो गई।

गुरु जी के दर्शन

स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज एक रात शहर सुलतान पहुँच गए। गुरु जी की आज्ञानुसार महाशय कृष्णकुमार और लाला नन्दलाल भी सायं को शहर सुलतान आ विराजे, परन्तु मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था।

रात्रि को वे शहर सुलतान में इकट्ठे रहे। गुरु जी और श्री नन्दलाल जी में निम्न बातचीत हुई—

गुरु जी—'हम आ तो गए हैं, क्योंकि लाला दयालदास जी उनके प्रेमी ने विवश करके, टिकट लेकर हमको रवाना कर दिया, परन्तु हमारी शर्त है कि महात्मा जी हमसे अपने मुख से बात करें। यदि जीवन बाकी है तो व्रत तो जारी रहेगा, फिर मौन कर लेवें, केवल मेरे साथ ही बात करें।

हकीम जी—'महाराज जी की सेवा में मैं सब समाचार पूरे-पूरे रख देता हूँ जो उन्होंने मुझको लिखकर दिये थे। जिस समाचार को आप सुनना चाहते हैं वह तो मैं बता देता हूँ, परन्तु उनका मौन भंग न करें!'

गुरु जी—'नहीं, उसे बोलना पड़ेगा!'

लाला नन्दलाल बड़े गंभीर और निपुण व्यक्ति हैं। उन्होंने बात सँभालते हुए कहा—'महाराज को उन्होंने इसलिए तार दी कि कष्ट न करें। वे मौन कदापि भंग नहीं करेंगे, चाहे प्राण निकल जायँ। व्रत मौन का है, अदर्शन तो अपने सुभीता के लिए है। आप उनके स्वभाव को जानते ही हैं। इसमें आपका भी अपयश होगा कि अपने शिष्य से गुरु ने स्वयं व्रत-भंग कराया।'

गुरु जी—'तुम्हारे सिवा और कोई तो होगा नहीं। तुम्हें ही उसके बोलने का ज्ञान होगा, और किसी को कैसे ज्ञान हो सकता है?'

लाला नन्दलाल—'महाराज जी! जब आपसे कोई पूछेगा तो क्या आप झूठ बोलोगे? अथवा, यदि मेरे पिता जी औरों के सामने मुझसे पूछें तो शायद इन्कार ही कर दूं, पर पिता के सामने कैसे असत्य बोल सकता हूँ? इसलिए आप ऐसे ही कृपा करें!'

गुरु जी मान गए। दूसरे दिन प्रातः लाला नन्दलाल मुझको सूचित करने आए और सब रात का समाचार भी दे गए।

दोपहर के बाद गुरु जी महाराज पधारे। मैंने गुरु जी के चरणों में अपना सिर रक्खा, उन्हें तख्तपोश पर बिठाया, स्वयं नीचे बैठा।

गुरु जी ने कहा कि वृतान्त तो सारा वह सुन चुके हैं। उन्होंने लाला दयालदास का समाचार भी दिया और कहा—'सिर में बादाम रोग़न डाला

करो ! अनाज एक समय अवश्य खाया करो ! जाप करना छोड़ दो ! आराम से पड़े-पड़े प्रणव का जाप करो !' आवाज़ों के सम्बन्ध में कहा कि 'रोग से भी भाँति-भाँति की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं और आध्यात्मिक मंज़िल भी है।'

सन्त-मत में मैं पढ़ चुका था कि ये आवाज़ें साधक की आत्मिकोन्नति की मंज़िलें हैं। उन दिनों मैं सिर ज़रा नीचे झुकाता तो प्राण ब्रह्मरन्ध्र में, सिर में चढ़ जाता था।

गुरु जी दो-चार दिन बाद वापस चले गए।

मैं जप के विना रह नहीं सकता था। उसका परिणाम यह होता कि फिर कान का दर्द बढ़ जाता। छैनाराम लगभग एक मास मेरे पास सोता रहा। फिर मैं स्वयं बलवान् बन गया और उसकी छुट्टी कर दी।

सम्वत् १९७६ से, जब मेरी पत्नी का देहावसान हुआ, सिर में तेल-कंघी नहीं करता था। अब मस्तिष्क कमज़ोर होने के कारण वैद्यों की आज्ञा से तेल लगाना पड़ा। फिर मालिश भी कराता रहा।

भगवान् भक्तों की सुध लेता है, कैसे ?

अपने हाथ से भोजन बनाने से पूर्व भगवान् की एक अद्भुत लीला घटी। रोटी के पैसे तो मेरे पास न थे। पचास रुपये का एक मनीऑर्डर मेरे नाम अफ्रीका से लाला काशीराम ने भेजा। कूपन पर लिखा था कि मेरा वेतन ५०० रुपये हो गया है, ५० शिलिंग वृद्धि हुई है। १९२९ में जब आपका संगी था तो ३७५ रुपये लेता था, फिर उसी वर्ष के अन्त में ४००, १९३० में ४५० और अब ५०० रुपये हो गए हैं। अब सर्दी आने-वाली है, ५० रुपये बच्चों के कपड़ों के लिए भेजता हूँ।

मनीऑर्डर पर हस्ताक्षर किये, प्रभु का धन्यवाद किया। प्रेम से अश्रु बह निकले—प्रभो, तू कैसा कारसाज़ है ! अब मैं निश्चिन्त हो गया कि ७० रुपये से शेष नौ मास अच्छे बीतेंगे।

मैंने भोजन का सामान मँगवा लिया। छैनाराम को रुख़सत कर दिया, और अपनी रोटी स्वयं बनानी शुरू की।

यदि कोई नज़दीक का प्रेमी कुछ भेंट करता तो मैं सर्वथा इन्कार कर देता। इतनी दूरी से भगवान् की प्रेरणा से ही आया यह धन स्वीकार करके मैंने प्रभु का धन्यवाद किया कि मुझे प्रभु ने निश्चिन्त कर दिया। इस व्रत में मैं कई वार कान के दर्द से रुग्ण हुआ। कारण स्वयं ही बनते रहे—लिखने-पढ़ने या जाप में अति कर देना आदि। एक करोड़ जाप पूरा तो न

हुआ, परन्तु मैंने स्वाध्याय खूब किया। महात्मा गांधी की आत्मकथा, स्वामी सियाराम जी, महात्मा बुद्ध, हज़रत मुहम्मद साहिब, स्वामी विवेकानन्द के जीवन-चरित्र महाशय कृष्णकुमार की कृपा से पढ़े।

द्वन्द्व-सहन की प्रतिमा

सन्ध्या के मनसा-परिक्रमा-मन्त्रों पर सन्ध्या की कई पुस्तकें पढ़ीं, परन्तु सातवलेकर के 'सन्ध्या-अनुष्ठान' से जितना लाभ हुआ, अन्य किसी पुस्तक से नहीं हुआ। मैंने अपनी आयु में मार तो खाई, परन्तु मारा किसी को नहीं; गालियाँ खाईं, परन्तु गाली दी किसी को नहीं; कई-एक ने मेरे साथ मित्र-द्रोह किया, परन्तु मैंने किसी एक का भी अपमान या हानि नहीं की, और न प्रतिकार लेने का विचार तक किया। अपने अन्दर द्वेष-वृत्ति-रहित होने से सन्तुष्ट था। जीवन-काल की दो घटनाएँ अवश्य खटकती थीं—

एक घटना तो १६०८ की है जब मैं अलीपुर में पटवारी था। यद्यपि अन्याय अथवा हक़तल्फ़ी (पराया हक़ मारना) नहीं की, विद्यानुसार उचित विधि से इन्तकाल का अमल किया, तदपि वह द्वेष से खाली न था। जब मैंने भक्त हुकमीराम को कहा कि आपके पास हम लोगों का काम पड़े तो आप सुनते तक नहीं हो, और आपका काम हो तो आप फिर हुज्जत करते हैं। तब उनके (भक्त के) मुख से निकला कि पटवारी बड़े शरारती होते हैं। उस समय आवेश में आकर मैंने उनके कहने पर इन्तकाल चढ़ा दिया। दूसरे पटवारियों ने घूस लेकर उनके कहने के अनुसार चढ़ाया जो ग़लत था। उसका पश्चात्ताप किया, परन्तु चूंकि अनुचित न था इसलिए छाती पर कोई भार न मालूम होता था।

दूसरी घटना सम्वत् १६८४ की है जब मेरी अनुपस्थिति में मेरे मान्य चाचा जी ने अपने पुत्र चन्द्रभान के विवाह के समय मेरे परिवार में कहा—'कहाँ है महाशय दाढ़ीवाला? मैं उसकी आज दाढ़ी भी उखाड़ लेता!'

यह सुनकर मैंने मन में धारणा कर ली थी कि ऐसे चाचा के मरने पर, जिसका सदा मैं साथ देता आया था, उसके शव को कन्धा भी नहीं दूंगा।

जब यह बात याद आई तो बहुत पश्चात्ताप किया और अपने इस विचार से सख्त घृणा हुई और प्रतिज्ञा की कि कन्धा ज़रूर दूंगा।

कई वर्ष बाद जब वह बीमार हुए तो मैं जतोई पहुँचा। उनकी बीमारी में बड़ी सेवा की। उनका दीया-बाती भी हुआ। मैं चाहता था कि

यह मरे तो कन्धा देने की मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो जाय, परन्तु प्रभु ने उन्हें पुनः स्वस्थता प्रदान कर दी।

इसी आचरण का मैंने ऐसा मनन किया, ऐसा मनन किया कि मुझको बुरे-से-बुरे, पापी-से-पापी आदमी से भी प्रेम हो गया जिसका ज़िक्र आगे आएगा।

मनोबल का जन्म

घर में बच्चों पर मुझे जल्दी क्रोध आ जाता था। जब उनसे कोई ग़लती, हानि, अथवा अनुचित व्यवहार हो जाता तो मैं झट नाराज़ हो जाता था। व्रत में इन बातों की पड़ताल की तो बहुत पश्चात्ताप हुआ और भविष्य के लिए प्रतिज्ञा कर ली कि घर में कुछ भी हानि-झगड़ा क्यों न हो, कुछ नहीं कहूँगा। 'ऐसा होना ही था'—यह कहकर अथवा अन्य विधि से टाल देता। ऐसा मनन करने से सारी आयु की छोटी-बड़ी बातें स्मरण करते हुए मुझको निश्चय हो गया कि मेरा मन मेरा परम मित्र है। उसे शत्रु कहना या समझना बड़ी भूल है। इस व्रत में मैंने मन का जो बल देखा और उतार-चढ़ाव अनुभव किये, वे 'मनोबल' नाम की पुस्तक में लिख दिये। जो कुछ मेरे साथ बीती, उस पुस्तक से हर कोई देख सकता है।

लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार की पकड़ से तो मैं बचा रहा, इस व्रत में मैंने 'दृष्टान्त मुक्तावली' के दो भाग भी लिखे जो अपने लिए भी लाभप्रद सिद्ध हुई।

साधु का कोमल हृदय

वाह प्रभु! धन्य हो! तेरी महिमा महान् है! एक दिन ऐसा हुआ कि कोने में चटाई को लपेटकर रक्खा। घरायण (भृङ्गी कीड़ा) ने अपने बच्चे को रखने के लिए अपना घर वहाँ बना लिया। मैं प्रतिदिन देखता कि किस परिश्रम और प्रेम से वह मिट्टी ला-लाकर बनाती, लीपती। कई दिन गुज़र गए। मैंने सफ़ाई की तो मुझे ख़याल ही न रहा और चटाई उठाकर बाहर रख दी।

अपने समय पर घरायण आई लीपने व सँभाल करने, तो भूं-भूं करती रही। ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ देखती एक सिरे से दूसरे तक बहुत तड़पी, बहुत व्याकुल हुई। मुझको खयाल आया कि मैंने बेपरवाही से चटाई बाहर रख दी और यह व्याकुल हो रही है, इसका मुझको पाप लगेगा! दौड़कर बाहर गया ताकि चटाई वैसी खड़ी कर दूं। ज्योंही खड़ी की तो वह घर नीचे आ गया। टूटकर बच्चा निकल पड़ा और च्यूँटियाँ इकट्ठी हो गईं। मैं

ज़ार-ज़ार रोने लगा ! पर अब क्या हो सकता था। बार-बार यही कहता कि यह मुझे अभी काट ले और डस दे, ताकि इसकी आत्मा शान्त हो। अज्ञानता से, बेपरवाही से जो यह पाप मुझसे हो गया है, किसी तरह घुल जाय। सायं तक कई बार रुदन हुआ, फिर शान्त हो गया।

एक बार गणपति भी माताजी की आज्ञानुसार आया और सन्देश लाया कि माता जी अभी संन्यास नहीं लेने देंगी; व्रत के बाद कहीं विचार न बना लें !

मैंने आश्वासन दिलाया कि 'दस वर्ष तक तो मैं अभी संन्यास नहीं लूंगा। तुम्हारे ऊपर ऋण का भार न छोड़ूँगा, निश्चिन्त रहो !'

व्रत की समाप्ति

समय बीतते देर नहीं लगती। वर्ष पूरा होने को आ गया। मैंने दस लाख गायत्री की आहुति देनी थी। चौधरी खिलूराम आदि को बुलाया, विचार-विनिमय किया कि बहुत-से आदमी व्रती बनाए जाएँ। १५ दिनों में दस लाख आहुतियाँ दी जावें। पूज्य गुरु जी महाराज, महाशय मथुरादास, लाला चिमनलाल, पं० कालिदास, बाबू नन्दलाल आदि को भी सूचना दी जावे। खस टोबा से मँगवाई जावे, घृत का यहाँ से प्रवन्ध किया जावे। १८ दिन यज्ञ हो। गुरुकुल से चिरंजीव लखपति व भीमसेन जी को महाशय जी साथ लावें। विद्याभूषण भी आवें। अन्तिम दिन लंगर हो। इन वातों के साथ सामान का अनुमान भी लगाया गया।

मैंने कहा कि मेरे पास एक लोई (गर्म चादर) ४० रुपये की है, एक घड़ी ६० रुपये की और सोने की चेन है, इन्हें बेचकर रुपया प्राप्त करें, फिर मैं यज्ञ करूँगा। यज्ञ का ऋण पूर्णाहुति से पहले अदा होना चाहिए, तब यज्ञ की सफलता होगी।

सोने की चेन तीन तोले की थी। वह मुलतान जाकर बेच आए, रुपया नक़द हो गया। लोई और घड़ी लेनेवाला कोई न था। काम प्रारम्भ कर दिया गया। बड़ी लम्वी-चौड़ी वेदी वनाई गई। पाँच फुट का कुण्ड था। गोगिया-परिवार के सब युवक व्रती वने। विद्याभूषण, गणपति, लाजपत भी शामिल हुए। मेरे अतिरिक्त चौधरी तुलसीदास, चौधरी खिलूराम, नेभराज, भुवानीदास, जिन्दाराम, छेनाराम, मास्टर क्षेमचन्द, चन्द्रभान, लखपति, भीमसेन, महाशय मथुरादास, रामनाथ आदि सम्भवतः १९ आदमी थे।

कुछ धारणाएँ

(१) उधार नहीं लूँगा, चाहे भूखा रहना पड़े !

(२) किसी से नहीं माँगूँगा, चाहे धर्म-कार्य के लिए। किराया पास न हुआ तो पैदल चल सकूँगा तो चल पड़ूँगा, परन्तु मुख से माँगूँगा नहीं !

छः मास पर्यन्त मन से यह पूछते रहे कि यदि किसी वस्तु के खाने की चाह हो तो उसे भी नहीं खाएँगे, अपितु उस दिन खाना न खाएँगे, दण्ड-रूप में उपवास करेंगे ।

मेरे मन ने सहर्ष स्वीकार किया । यह परीक्षण कई वर्ष चला और इसमें उत्तीर्ण हुआ । फिर किसी निमित्त पर बन्धन हटा दिया ।

(३) पुत्रेष्टि-यज्ञ के नियमों की प्रेरणा नोटबुक में लिख ली ।

वेद के ब्राह्मपारायण यज्ञों की भी प्रेरणा हुई तो वह भी नोट कर ली। प्रभु-कृपा से सब शिक्षाएँ, क्रियाएँ, दृश्य रूप से अन्तःप्रेरणा में प्राप्त हुईं जिनका अनुकरण इसी यज्ञ से प्रारम्भ किया ।

दक्षिणा मेरे पास नहीं थी । आम की मूढ़ियाँ, घी, सामग्री और कुछ नक़द लाला नन्दलाल जी को भेंट किया । रुपये उन्होंने नहीं लिये, कहा— 'संस्कार चंद्रिका मँगवा देना ।' बाक़ी वस्तुएँ उनके घर पहुँचा दी गईं ।

लंगर

भोजन से पहले मैंने कई-एक के चरण धोए। लंगर में दाल के अतिरिक्त सब्ज़ियाँ भी थीं। मैं तो एक ही सब्ज़ी या दाल से खाता था, परन्तु यज्ञ-शेष के रूप में सब खाना स्वीकार किया । चौधरी साहिबान के पूछने पर कहा कि 'लंगर मेरी ओर से नहीं, अपितु उनकी अपनी ओर से है। बाहर के सब लोग उन्हीं के मेहमान हैं ।' ऐसा न करते तो उनका अपयश होता ।

यज्ञ व लंगर निर्विघ्न समाप्त हुए। मैंने सबका धन्यवाद किया ।

हर मुसीबत में प्रभु की बरकत निहित

इस व्रत में जो कुछ मुझको प्राप्त हुआ, वह बीमारी के कारण हुआ । यदि यह रोग न होता तो दस वर्ष पर्यन्त यह सफलता प्राप्त न होती। प्रभु का कोटि-कोटि धन्यवाद है !

माता-नानी सब आए थे। माता के चरणों पर जब माथा रक्खा तो अश्रुधारा इतनी बही कि माँ के चरण धुल गए। उन्होंने उठाकर छाती से लगाया, भरपूर आशीर्वाद दिया ।

चौधरी साहिवान पूर्णाहुति के बाद यज्ञशाला में मिलने आए। उनका जीवन श्रद्धा और नम्रता का ऐसा संगम था कि जिसे देख के लोग चकित हो गए और मेरे अश्रुपात होते रहे।

मैं उन दोनों परिवारों के मुखिया चौधरी ताराचन्द, चौधरी ईश्वर-दास को 'पूज्य' लिखा करता था और प्रतिदिन प्रातः चरण-स्पर्श कर नमस्ते करता था। अफ्रीका से वापसी पर मेरा आकार वदल चुका था। उन्हें लज्जा आती जब उनको चरण-स्पर्श करके मिलता। वे करवद्ध क्षमा-याचना करते और कहते कि अब आप हमारे पूज्य हैं। राय गेलाराम से विशेषकर उन्होंने सिफ़ारिश कराई कि अव चरण-स्पर्श न किया करें। तब से चरण-स्पर्श बन्द हो गया और साथ ही कहा कि पत्रों में भी 'पूज्य' हर्गिज़ न लिखा करें।

इस अवसर पर दोनों चौधरी साहिबान गले में कपड़ा डालकर आए और तुरन्त मेरे पाँवों पर माथा टेक दिया।

वे मेरे शाह थे; उन्हें मैं राजा का दर्जा दिया करता था। आज ऐसे मिल रहे थे जैसे वे यजमान हों और मैं उनका पुरोहित। मैं तो शर्म से अश्रु बहाता था और उन्हें इस श्रद्धा-विनम्रता की क्रिया से प्रसन्नता की हद न थी; वे अपने-आपको कृतकृत्य मान रहे थे।

दोनों को उठाकर, गले लगाकर बड़े प्रेम से मिला और उनकी अनन्त कृपाओं का धन्यवाद किया।

मैं प्रतिकार तो दे न सकता था, परन्तु प्रतिदिन उनके परिवार के छोटे बच्चे से वड़े तक (दयाल तक का भी जो 1930 में जन्मा था) सवका आकार सामने ला-लाकर परमेश्वर से प्रार्थना करता।

'योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः' मंत्र का प्रभाव

मैं जब घर पहुँचा, लगभग तीन पहर दिन वीत चुका था। घर पहुँचते ही माता जी व नानी जी को माथा टेका और आसन लेकर आर्यसमाज-मंदिर चला गया। घर का स्थान इतना न था कि दर्शन देनेवालों को आराम से विठाया जा सके। आर्यसमाज-मंदिर विशाल था। लोग आते-जाते रहे। आदर-सत्कार, मेल-मिलाप, नमस्कार व शिष्टाचारपूर्वक सबके साथ मिला।

यह 'योऽस्मान् द्वेष्टि' मंत्र-भाग पर चिन्तन का पहला प्रभाव था। जब मेरे मन में किसी के प्रति द्वेष-भाव न था तो दूसरे के मन में मेरे प्रति

कैसे रह सकता था ! काफ़ी देर तक बैठकर वे प्रेम से बातें करते रहे, फिर चले गए। मैंने प्रभु का धन्यवाद किया।

गुरु जी के आग्रह पर हज़ूरी बाग़ में कथा

पूज्य महानुभावो ! आप लोगों के सामने मैं नहीं जानता कि क्या बात रखनी चाहिए, क्योंकि आप सब पढ़े-लिखे हैं। फिर भी मैं जो पाठ पढ़ा हूँ, उसे आपको सुनाता हूँ।

मैं रेलगाड़ी में आ रहा था कि कॉलिज के कई लड़के अपना मता बाँधकर (सलाह करके) मुझे बड़ी दाढ़ीवाला देखकर विनोद करने की ठान मेरे पास आ बैठें।

एक ने कहा—'आप बुज़ुर्ग आदमी हैं, हम लड़के हैं, हमें कोई उपदेश दीजिये!'

दूसरे ने कहा—'जी जनाब, ज़रूर कृपा कीजिये !'

मैं भाँप गया कि ये मेरे साथ शग़ल के तौर पर आए हैं। मैंने कहा—'भाई ! तुम बी०ए०-एम०ए० वाले हो, मैं तो अपठित हूँ, आपसे क्या कहूँ ?'

ख़ैर, उनमें से एक बहुत श्रद्धालु का रूप बनाके मिन्नत से कहने लगा। दूसरे ने नास्तिकपन प्रकट कर दिया। मैं सुनता रहा। जब उन्होंने देखा कि यह हमारे दाव में नहीं आ रहा तो चुप हो गए।

मैंने अवसर देखकर उनसे प्रश्न किया—'आप लोग पढ़े हुए बुद्धिमान् हो, ज़रा समझाइये कि मनुष्य और पशु के शरीर में आँख, नाक, कान, जिह्वा आदि सब अंग प्रभु ने बनाए हैं या प्रकृति ने ? पर ज़रा ध्यान कीजिये कि जितने पशु हैं, चूहे से लेकर हाथी पर्यन्त, सबके कान हिलते हैं, परन्तु मनुष्य के कान कभी नहीं हिलते। सब पशुओं के कान ऊपर हैं, आँखें नीचे, फिर मनुष्य की आँखें ऊपर और कान नीचे एक ओर हैं, यह भेद किसने बनाया और क्यों ?'

लड़कों को सुनते ही होश आ गई।

मैंने फिर कहा—'मैं आपसे हाथ जोड़कर पूछता हूँ, आपमें से कोई सज्जन बतावे कि यह भेद क्यों ? परमेश्वर को इस प्रकार की रचना से क्या अभीष्ट था ? हम मनुष्यों को बहुत दूर जाने की ज़रूरत नहीं। पशु और मनुष्य के अन्दर जो-जो भेद प्रभु ने रक्खे, उनका घर-बैठे शरीर में अवलोकन करें तो हमें समझ आ जावेगी कि हमारे जन्म का उद्देश्य अथवा लक्ष्य क्या है, मानव-योनि का महत्त्व क्या है ?

जब लड़कों ने यह सुना तो वे चकित हो गए और उनका मेरी बात सुनने की तरफ विशेष ध्यान हो गया।

लायलपुर में प्रचार की धूम

लायलपुर[1] में तीन समाजें थीं—कॉलिज-समाज, गुरुकुल-समाज, डगलसपुरा-समाज। पहली दो समाजों में मेरी कथा और उपदेश हो चुके थे। डगलसपुरा-समाज नई बनी थी। बाबू दीवानचन्द टी० टी० के द्वारा मुझको निमंत्रण दिया गया। इस समाज के पुरोहित पंडित विश्वकर्मा जी थे, जो तपस्वी पंडित ख़ुशीराम जी त्यागमूर्ति वानप्रस्थी के सुपुत्र थे। कॉलिज-समाज के पुरोहित पंडित सोमदेव जी और गुरुकुल-समाज के पंडित पृथ्वीराज जी पुरोहित थे। इन दोनों में मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा हो गई। कारण कि उपदेश गायत्री पर होते थे और उपस्थिति बढ़ती जाती थी। अब दोनों इस ताक में थे कि ग़लती पकड़ें। एक दिन मैंने गायत्री के अर्थ किये; कहा कि विद्वान् लोग तो इसके अर्थ शास्त्र-विधि से कई प्रकार के करेंगे, परन्तु मैं अनपढ़ अपने स्थूल शब्दों में, जाटू बोली में आपको बतलाता हूँ — ग=गति, यत्रि=यात्री अर्थात् जिस मंत्र से यात्री की गति हो; जीवात्मा यात्री है और यह इस संसार में यात्रा करने आया है। अब भी लोग पाप से मुक्ति पाने के लिए तीर्थों की यात्रा करते हैं। वे तीर्थ तो मुक्ति देंगे या नहीं यह संदिग्ध बात है, परन्तु गायत्री मंत्र सचमुच तीर्थों का तीर्थ है। ग= गंगा, य=यमुना, त्र=त्रिवेणी, ये तीनों तीर्थ हैं। यात्री बिना पैसे ख़र्च किये प्रतिदिन इन तीनों के संगम में स्नान करके मुक्त हो सकता है। गायत्री का तीसरा अर्थ छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार ग=गय, प्राणों का बल, त्र=रक्षा करनेवाली, अर्थात् जो प्राण और इन्द्रियों का बल है, विषय-वासनाओं से हटाकर रक्षा करनेवाली शक्ति है, उसका नाम गायत्री है।

अब उनको अवसर मिल गया। पंडित सोमदेव ने पंडित पृथ्वीराज को भेजा, क्योंकि वह मुझमें पूज्य भावना रखता था और सहदेव के छोटे भाई लाला फतेहचन्द का साला था, गुरुकुल में भी रह चुका था। तब से भी पुरानी श्रद्धा रखता था। फिर भी भीतर से सहन न कर सकता था, यह सचाई थी। मेरे पास आकर कहने लगा कि 'मेरी तो आपमें बहुत श्रद्धा है। मैं इस समय पंडित बनकर नहीं आया। मैं जिज्ञासु बनकर आया हूँ। आपने जो गायत्री के अर्थ किये हैं तीर्थ-प्रकरण में, वे तो योगी लोग जानें, किन्तु योग की परिभाषा में ये अर्थ नहीं हो सकते। आपने नाड़ियों

१. फ़ैज़लाबाद (फ़ैसलाबाद, पाकिस्तान)

द्वारा सिद्ध भी कर दिया। दूसरा अर्थ ग+त्री आपने छान्दोग्य उपनिषद् के प्रमाण से दिया है। पंडित सोमदेव ने मुझे कहा है कि वह वर्षभर से छान्दोग्य की कथा स्त्रियों में करते हैं और अब भी कर रहे हैं, परन्तु यह अर्थ उन्होंने सारे छान्दोग्य उपनिषद् में कहीं नहीं पढ़े। आपने उपनिषद् का नाम लेकर लोगों का केवल विश्वास जमाया है—यह जिज्ञासा है।'

मैंने छान्दोग्य उपनिषद् निकालकर प्रमाण दिखा दिया। वस्तुतः जिसका विषय गायत्री नहीं, वह ऐसी बात को नोट न कर पाया। प्रमाण देखकर वह सन्तुष्ट हो गए।

फिर डगलसपुरा में तीनों समाजों ने मिलकर गायत्री-बृहद्यज्ञ भी किया। बड़ी भारी उपस्थिति थी। नियमों का पालन भी कराया। लोग प्रभावित हुए। चौधरी चन्द्रभान, वकील प्रधान आर्यसमाज कॉलिज-समाज ने कहा कि 'तीनों समाजों का संगठित होना त्रिवेणी का दृश्य है। पहले ये समाजें कभी इकट्ठी नहीं हुआ करती थीं।' इस संगठन का श्रेय उन्होंने मुझको दिया। पण्डित पृथ्वीराज को यह असह्य हुआ और बोले—'केवल गायत्री का यज्ञ कराते हैं; वेद का यज्ञ कराना चाहिए।' वह जानता था कि मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूँ। उसने तो उपालम्भ के रूप में कहा, परन्तु मैंने उसे सहर्ष स्वीकारा। धारणा बना ली कि अब वेद के यज्ञ कराने का अभ्यास करूँगा। जब तक उच्चारण शुद्ध न हुआ, गायत्री का यज्ञ करता रहा।

लाहौर राजकीय क्वार्टरों में प्रचार

राजकीय क्वार्टर लाहौर में लाला हरिचन्द बत्ता समाज-मंत्री थे। वह बड़े चतुर और कर्मशील मंत्री थे। समय-समय पर वह प्रचारार्थ संन्यासी महात्माओं को बुलाया करते थे। मुझको भी ले गए और एक मैदान में सायंकाल को मेरी कथा कराई। प्रातः पारिवारिक घरों में बारी-बारी से यज्ञ रक्खा गया। वहाँ के सब आर्य परिवार गायत्री और यज्ञ के श्रद्धालु बन गए। लाला रुचिराम ब्रह्मसमाजी थे, परन्तु उन्हें गायत्री में ऐसा प्रेम व श्रद्धा उत्पन्न हो गई कि प्रति सप्ताह शनिवार सायं से रविवार सायं तक अखंड पाठ के रूप में गायत्री का जाप रख दिया और लोग उल्लास से शामिल होते रहे। सब क्वार्टर गायत्री के जाप से गूँज उठे। मैं एक सप्ताह वहाँ रहा। कई परिवारों से मांस और घूँस लेना छुड़वा दिया।

गायत्री-अनुष्ठान के चमत्कार

लाला चिमनलाल का रोग-निवारण

लाला चिमनलाल खाट पर लेटा पड़ा था। घरवाले सब जाग रहे थ। सिविल सर्जन देख गया था। सब डॉक्टरों ने कह दिया कि उनके बचने की उम्मीद नहीं है। वंश-परिवार बड़ा था। दो मौतें पहले हो चुकी थीं। १९२७ में खुशाबीराम और १९३१ में निहालचन्द की मृत्यु हो चुकी थी; वे घाव भी अभी टीस रहे थे। बड़ी निराशा छाई हुई थी। मेरे पहुँचने पर चिमनलाल का उत्साह बढ़ गया। मैंने कहा कि मैं आ तो गया हूँ, परन्तु मेरा उपाय तभी चल सकता है जब आप सब परिवारवाले बिना ननु-नच मेरा साथ दवें। जिसे विश्वास न हो वह शामिल न हो। सबने एकस्वर में कहा कि आप जैसी आज्ञा करेंगे, हम वैसा करेंगे। उनके पारिवारिक डॉक्टर श्री दुनीचन्द थे। उनसे मैंने कहा—

मैं—डॉक्टर साहब ! आपको अपनी ओषधि पर विश्वास हैं या प्रभु पर ?

डॉक्टर—मुझे प्रभु पर विश्वास है, औषधि तो उसकी अपेक्षा कुछ भी नहीं।

मैं—मैं इन दवाओं की शीशियों को रोगी की दृष्टि से बहुत दूर करना चाहता हूँ। यदि आप मेरे उपाय में दवाई का परामर्श भी देंगे तो मेरा उपाय सफल सिद्ध नहीं हो सकता।

डॉक्टर—मैं आपसे अक्षरशः सहमत होऊँगा। जो अपना परामर्श भी दूँगा तो आपसे विचार करके ही दूँगा। आप निःसंकोच दवाइयाँ हटवा दें। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि दवाई कोई चीज़ नहीं है।

सबसे पहला जो काम किया गया वह था कमरे को दवाओं की गन्ध से मुक्त कर देना, अतः दवाएँ हटा दी गईं। गंगाजल मँगवाया गया। एकान्त में जाकर मैंने प्रार्थना और जप द्वारा अभिमंत्रित कर रोगी को चम्मच से पिलाना शुरू किया। खाट पूर्व से बदलवाकर, दक्षिण में सिर और उत्तर में टाँगें की गईं।

प्रातःकाल सबने हवन किया। चिमनलाल की खाट के बराबर स्टूल पर हवनकुण्ड रखकर अग्नि जला दी गई और वह आहुति घृत की देते, उनकी धर्मपत्नी मायादेवी सामग्री की आहुति देती रही। मैंने अलग हवन किया।

हवन से निवृत्त होकर परिवार को आज्ञा दी कि कोई कमरे में न रहे, वात न करें, वाहर जाकर सवा-सवा लाख गायत्री का जाप करें। सब उसी में लगे रहे। मैंने कहा कि गंगाजल, जाप और प्रार्थना ही उनका इलाज है।

चिमनलाल की आयु शेष थी। भगवान् ने उनकी रक्षा करनी थी। सभी ने दिलो-जान से जप आरम्भ कर दिया। जब रोगी को कमर के पास दर्द होता तो मैं उस स्थान को दबाकर अभिमंत्रित करता, प्रभु-कृपा से आराम आ जाता। चिमनलाल जी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। जब-जब आवश्यकता होती, गंगाजल केवल मैं अपने हाथ से देता। गायत्री-जप दिन-रात चलता रहता, प्रार्थना भी होती थी।

पूछने-पाछनेवाले सब लोग वाहर बैठते और समाचार लेकर चले जाते। कुछ दिन वाद डॉक्टर के परामर्श से गंगाजल के अतिरिक्त ग्लूकोज़ दिया। इससे श्री चिमनलाल जी स्वस्थ हो गए।

कराची-आगमन

लाला चिमनलाल के निमंत्रण पर मैं कराची गया। वहाँ पर व्यायाम-शाला का उत्सव था ; फिर कॉलिज-सैक्शन कराची का भी उत्सव था। पूज्य महात्मा हंसराज जी, लाला खुशहालचन्द जी, ठाकुर कँवर सुखलाल जी, पं० बुद्धदेव जी प्रभृति वहुत-से विद्वान् आए हुए थे। मैं उनसे परिचित न था। उनके व्याख्यान सुनता रहा।

लाला चिमनलाल के प्रयास से प्रिन्स गार्डन में प्रातः गायत्री-सम्बन्धी उपदेशों की योजना बनी। वाटिका में सब घास पर बैठ जाते। किसी मेज़-कुर्सी या घोषणा की आवश्यकता न थी। वाटिका में सब धर्मों के लोग आते और बैठ जाते। कोई-कोई खड़े रहते और श्रद्धापूर्वक सुनते। अव दोनों समाजोंवालें प्रातः पहुँचने लगे। पूज्य महात्मा हंसराज जी भी दो बार सुनने आए।

उपदेश समाप्त होने पर मुझे चिमनलाल जी कार में 'हवा बन्दर' छोड़ जाते जहाँ मैं मध्याह्न तक रहता, भजन करता, फिर दोपहर को कार भोजनार्थ ले जाती।

उपदेश के समय एक अति रूपवान् नवयुवक धोती पहने, नंगे सिर मेरे सामने बैठकर उपदेश के नोट लेता रहता। एक दिन मध्याह्न-पश्चात् एक जैंटलमैन (सभ्य सज्जन) सिर पर हैट, तन पर पतलून-बूट धारण किये, आकृति में पूरा अंग्रेज़, फलों का एक टोकरा उठवाए लाला चिमनलाल

के बँगले में उपस्थित हुआ और मुझ नमस्ते कर बैठ गया, और फल भेंट किये। श्री रामलाल कपूर (ट्रस्ट वाले) का वह पोता था, देवेन्द्र कुमार।

मैंने १५ दिन तक, ३१ मई १९३५ तक गायत्री का उपदेश किया। प्रिन्सिपल रामसहाय ने बड़ी श्रद्धा से व्रतपूर्वक गायत्री का उपदेश लिया।

अन्तिम दिवस सब श्रोताओं से, जो सैंकड़ों की संख्या में उपस्थित होते थे, मैंने गायत्री-जाप की दक्षिणा माँगी। सबने दी—किसी ने हज़ार, किसी ने पाँच हज़ार प्रतिदिन जाप करने की प्रतिज्ञा की।

३१ मई १९३५ की रात्रि को कोयटा में भूचाल आया। प्रातः को कराची में समाचार पहुँच गया। लोग घबरा गए। बहुतों के सम्बन्धी-जन वहाँ रहते थे। सबको उधर की चिन्ता लग गई।

कॉलिज-समाज में यज्ञ

प्रचार का प्रभाव स्त्रियों पर विशेष रूप से पड़ा। कॉलिज-समाज की देवियों ने कहा कि वे भी यज्ञ करना चाहती हैं। मैंने स्वीकार कर लिया। स्कूल के आँगन में यज्ञ हुआ जो दर्शनीय था। स्कूल दूर था, तो भी बहुत जनता खिंची चली आई। उस यज्ञ की दैनिक व्याख्या से (यज्ञ-मंत्रों की व्याख्या से) आर्यसमाजियों पर, जो कि सब व्रती थे, यज्ञ-महिमा उनके मन में घर कर गई। प्रिन्सिपल साहिब को बड़ी श्रद्धा हो गई। पूज्य महात्मा हंसराज जी पधारे। वह पाजामा पहना करते थे। मैंने एक मेज़ यज्ञ-मण्डप के बाहर ऊँचे चबूतरे पर रखवा दी और उनका उपदेश कराया। वह सब समाचार से अवगत हो चुके थे। उन्होंने मुझे भरे जलसे में हार्दिक आशीर्वाद दिया और कहा कि परमात्मा करे यह यज्ञ की प्रणाली जो महात्मा जी ने अब चला रक्खी है, सारे पंजाब में फैल जावे। कॉलिजवाले प्रायः मांसाहारी थे। इस यज्ञ में कई-एक ने मांस का परित्याग किया। सब व्रतियों ने यज्ञ-हवन और जाप की प्रतिज्ञा की।

एक करोड़ अखण्ड गायत्री-जाप

एक दिन सायं के चार बजे भक्त सोनूराम जी और बख्शी रामनाथ जी मेरे पास बैठे थे। फुरना (अन्तःप्रेरणा) उठी कि एक करोड़ गायत्री-जाप अखण्ड रूप से कुटिया के उपासनालय में किया जावे। १२ आदमी व्रतरूप से रहें और छः मास में पूरा किया जावे। जब इस कुटिया की चारदीवारी बनी तो भक्त जी ने इसका नाम 'भक्ति साधन आश्रम' रक्खा। मैंने कहा—'भक्त जी! यह मामूली झोंपड़ी है; कुटिया कहाँ? आश्रम कहाँ? साधन

कौन करे-करावे ? इस नाम से प्रसिद्ध करने में लज्जा आती है, कुटिया ठीक रहेगी ।' परन्तु परमेश्वर को ऐसा ही स्वीकार था । उनके हृदय में इस नाम की प्रेरणा सालभर पहले प्रभु ने कर दी थी ।

चारों वेदों का यज्ञ

इस अवान्तर में मैं यज्ञों में व्यस्त रहा । एक महीने का यज्ञ १४.११.३५ से १५.१२.३५ तक लाला चिमनलाल के घर मघियाना में चारों वेदों का यज्ञ कराया । बड़ी श्रद्धा से एक गाड़ी पलाश की समिधा की मँगवाई । केसर-कस्तूरी-चन्दन का चूरा पूरे वज़न का प्रयोग किया गया । जनता भी आई, उपदेश भी होते रहे । वेदपाठ में मेरे सुपुत्र गणपति जी ने सहायता दी । लाला चिमनलाल ने उसे बुलवाया था । महाशय लोकूराम (स्वामी ब्रह्मानन्द) भी व्रतियों में शामिल थे । यज्ञ तो दर्शनीय था ।

एक विचित्र घटना

एक विचित्र घटना घटी । यजमान की छोटी पुत्री रमेश दो वर्ष की थी । उसे निमोनिया हो गया । जो बच्ची माता की गोद में रहनेवाली हो, उसके लिए पृथक् होना बड़ा कठिन था । एक दिन तो लाला चिमनलाल की धर्मपत्नी मायादेवी अति व्याकुल और अधीर हो गई । यज्ञ पर उसका चित्त कैसे लगे ? लाला चिमनलाल धैर्यवान् रहे । लाला कश्मीरीलाल भी व्रती थे । उनके परिवार की सब स्त्रियाँ शामिल थीं । ३०.११.३५ को प्रातः मैंने प्रार्थना की जब वह अधिक रुग्ण हो गई; यहाँ तक कि यज्ञ भूलकर मायादेवी को बच्ची से बँध जाना पड़ा । विघ्न का भय निर्बल दिलों में उपजना तो अनिवार्य ही था । मुझे प्रभु पर पूरा विश्वास था कि भगवान् यज्ञ का रक्षक है । मेरी प्रार्थना आवेग-भरी थी जो इस प्रकार है—

> हे सकल दुःखहर्ता ! विघ्न-विनाशक प्रभो ! ऐसे पवित्र महान् यज्ञ में बिठाकर फिर कोई आज़मायश तो नहीं करने लग गए ? पिता! हम तो असमर्थ, क्षुद्र, अत्यन्त निर्बल जीव हैं । हमें जो आश्रय है तो तेरा ही है । नित्यप्रति सायं-प्रातः तेरी चरण-शरण में पड़कर अपने-आपको तेरी भेंट करते रहते हैं । सदा तुमसे ही रक्षा तथा सहायता माँगते हैं । फिर तू उनको भी परीक्षा में क्यों डालता है दयानिधे भगवन् ? हम परीक्षा के योग्य नहीं, हमारी परीक्षा न लें ! हम तेरी परीक्षा में उत्तीर्ण कैसे हो सकते हैं ?

बच्चा रोगी हो जाए और उसे तू निमोनिया कर दे, फिर माता और पिता का ध्यान भी उधर न जाए, यह कैसे सम्भव है ? उसके रुदन की आवाज़ पर उनका मन उधर चलायमान न होवे, यह असम्भव है पिता !

तो क्या प्रभु, यही देखना चाहते हो कि यजमान को बालक अतिप्रिय हैं अथवा आप प्रभु प्रिय हैं ? भगवन् ! यह भी कोई भला परीक्षा है ? तू तो प्रिय इसलिए है कि तू ही हमारा दाता है, माता-पिता है, परित्राता और विधाता है; और बालक इसलिए प्रिय है कि यह तेरी दात (देन) है, तेरी बख्शीश है। नन्हा शिशु दो वर्ष का···कोई बड़ा नहीं···जिसका निर्वाह केवल माता-पिता पर ही है, उसका अपने माता-पिता के बिना और कोई आश्रय नहीं, फिर शरण पड़े की यदि माता-पिता लाज न रक्खें, तो भी तेरे गुनहगार ! क्योंकि यह दात तूने सँभालने के लिए दी, पालन-पोषण के लिए दी, रक्षा के लिए दी, कहीं से वे उठाकर नहीं लाए।

फिर प्रभो ! तू आप ही स्वामी है। हमें तो इतनी समझ नहीं, हम शरण पड़े हुओं की परीक्षा न लो, परीक्षा न लो ! जो तेरे साथ बल-आज़माई करता हो, उसकी आज़मायश कर ! हम दीनों की, चरणों में · शरण में आए हुओं की परीक्षा तेरी शान की शोभा नहीं। प्रभो ! तेरी प्रजा ही तेरी हँसी करेगी। मेरा तो प्रभु, तेरे दरबार में निवेदन ही हो सकता है। मैं तो तेरा आश्रित हूँ, कोई आश्रयदाता नहीं कि तुझे आज्ञा दूँ कि ऐसा कर या ऐसा न न कर। मैं तेरे दर का आश्रित याचक हूँ, अपने नाम को लाज पाल ! हमारा तीर, हमारी तलवार, हमारी शक्ति और हमारा सब-कुछ तेरे पवित्र दरबार में बिलबिलाहट और प्रार्थना ही है। आगे आप स्वामी हो प्रभु, आप स्वामी हो। तेरी मंगल-इच्छा पूर्ण हो !

परमेश्वर की असीम दया से बच्ची रमेश स्वस्थ हो गई और यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ।

अनुपम यज्ञ

सोमवार से जो यज्ञ शुरू हुआ, वह यज्ञ अनुपम था। कुटिया से शहर तक चौबीस घण्टे गायत्री की गूँज सुनाई देती थी। नियमों का पालन अक्षरशः होता। रात-रहते देवियाँ तथा पुरुष गायत्री-गान करते आते और

सारे आश्रम में झाड़ू-पुताई इतनी श्रद्धा से करते कि क्या कहने ! पूर्ण समाचार तो महाशय मथुरादास जी से लगता, पर वह अब स्वर्गवास हो चुके हैं।

यज्ञ-प्रक्रिया का प्रभाव

श्रावण सन् १९३६ में जब भल्ला जी के घर होशियारपुर में चारों वेदों का यज्ञ हुआ तो काशी के पंडित मँगवाए। पंजाब के सनातनी व आर्य-समाजी भी आए। तब मुझको व महाशय लोकूराम जी (स्वामी ब्रह्मानन्द) को भी निमंत्रित किया गया। पूज्य आचार्य देव शर्मा जी गुरुकुल काँगड़ी वाले भी वहाँ थे। मेरी उनसे प्रथम बार भेंट हुई, हालाँकि वह पहले मेरे सम्बन्ध में सुन चुके थे। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इसपर मैंने अपने यज्ञ के लिए आरम्भ में दर्शन देने की प्रार्थना की।

गुरुकुल में जाकर आचार्य जी ने पत्र लिखा। जब मैंने प्रार्थनापत्र और विज्ञापन भेजा तो उन्होंने पूछा कि आपके इस महान् यज्ञ का उद्देश्य क्या है ?

१९३५ में जब मुझको अन्तःप्रेरणा हुई अथवा फुरना उठी तो यह ध्वनि थी कि कुटिया पर एक करोड़ गायत्री-जाप होना चाहिए और फिर आगे वही यज्ञरूप में बढ़ता गया। यह ज्ञान न हुआ कि ऐसा क्यों होना चाहिए और न ही किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया, अपितु सब प्रस्ताव से सहमत हो गए थे। अब श्री आचार्य जी के प्रश्न के उत्तर में जब मैं पत्र लिखने लगा तो प्रभु-कृपा से उद्देश्य की ध्वनि भी अन्दर से उठी और मैंने लिखा कि चारों वेदों के यज्ञ का उद्देश्य तो है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और गायत्री के अखण्ड जाप और साधन-तप से उद्देश्य है अपनी आत्मिक उन्नति।

उत्तर जब उनके पास पहुँचा तो उन्होंने लिखा कि 'इस उद्देश्य के साथ मैं सहमत हूँ। बहुत उत्तम है ! परन्तु जिस दिन आपने आरम्भ करना है, उस दिन मुझे अवकाश नहीं कि मैं पहुँच सकूँ। आप मुझे अपना व्रती समझ लीजिये। मैं आपके कार्यक्रम के अनुसार ठीक उसी समय आपके यज्ञ के लिए प्रार्थना करूँगा और मध्य में आऊँगा।'

यज्ञारम्भ के पश्चात् उनका पत्र आया कि "मैंने ठीक पाँच बजे प्रातः आपके यज्ञ में सूक्ष्म शरीर से शामिल होकर आप सबके दरम्यान प्रार्थना

की और जाप भी किया, निवृत्त होकर अपनी बहन से चक्की का आटा पिसवाकर तीन सच्चे आर्य साधुओं को भोजन कराया। आप समझिये कि मैं आपके यज्ञ में उपस्थित हूँ। आज प्रातः मुझे बड़ा आनन्द रहा।"

फिर मध्य में वे पधारे और तीन-चार दिन उपासनालय में जप करने के लिए कहा, परन्तु व्रतियों में इतनी लग्न थी कि उनमें से किसी ने अपनी बारी देनी न स्वीकारी। मैंने कहा कि महाराज! आप मेरी बारी पर अन्दर बैठकर जाप करें, मैं बाहर बैठकर अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा। चुनांचि उन्होंने ऐसा ही किया।

फिर सायं-समय एक दिन यजमान बनने को कहा तो एक समय उनको व्रतियों की इच्छा की अवहेलना करते हुए भी अवसर दिया गया। वे यजमान बनकर आहुति देते रहे। वेदपाठ का समय माँगा तो वेदपाठ भी किया। उपदेश तो उनका प्रतिदिन होता था।

खादी की प्रतिज्ञा

एक सायं को महाशय लोकूराम जी ने मेरी शिकायत की कि आप (आचार्य जी) इनसे प्रतिज्ञा लें कि शुद्ध खादी पहना करें। मैं विदेशी वस्त्र तो पहनता नहीं था, स्वदेशी मिल के बने ही प्रयोग करता था।

आचार्य जी ने जब मुझसे कहा तो मैंने प्रतिज्ञा करने में असमर्थता प्रकट की, क्योंकि उनकी धारणा थी कि महँगी वस्तु प्रयोग नहीं करनी। खद्दर बड़ा महँगा था और फिर जिसने धोती-वस्त्र मुझको भेंट करना है, उनको वो कैसे कह सकते हैं जबकि महँगाई ज़ोरों पर थी।

इसपर लाला कृपाराम ने कहा कि 'वर्षभर के वस्त्रों का शुद्ध घर की तैयार कराई खादी का ज़िम्मा मैं लेता हूँ, पहुँचाया करूँगा।'

लाला सन्तराम ने कहा कि 'नई धोती अभी मैं देता हूँ, आप तो आज से ही आरम्भ कर दें!'

तब मैंने कहा कि उनकी दूसरी शंका है कि विदेशी का बहिष्कार कर दें, तो यदि उनका जन्म विदेश में हो जाय तो फिर उन्हें उस देश से प्रेम न होगा।

आचार्य जी ने कहा कि 'यही भूल है! आपकी प्रतिज्ञा है यज्ञ करने की। यज्ञ वह होता है कि जिससे निर्धन लोगों की उदरपूर्ति हो। विलायत (विदेश) का वस्त्र आपके घर के श्रमियों को भखा मारता है। आप खादी

पहनेंगे तो आपके श्रमियों निर्धनों को आजीविका मिलेगी। आपका उद्देश्य विदेशी माल का बहिष्कार नहीं, अपितु अपने निर्धन पड़ोसियों की पालना है। यदि आप विदेश में जन्म लेंगे, तो भी भारत से शत्रुता न होगी, अपितु यदि संस्कार रहेंगे तो अपने पड़ोसी निर्धन की सहायता के। महात्मा गांधी जी ने यज्ञों में चीनी के स्थान पर गुड़ का प्रयोग इसलिए लिखा है कि यज्ञ में गुड़ पड़ने से गुड़ के बनानेवाले श्रमियों को मजदूरी पहले मिलेगी और मालिक को भी लाभ होगा, परन्तु चीनी की अवस्था में पूँजीपतियों का लाभ तो पहले ही बना-बनाया है! इसमें श्रमियों को कुछ नहीं मिलता, क्योंकि चीनी बनाने में बिजली काम करती है।'

तब मैंने समझा कि खद्दर पहनने का उद्देश्य क्या है, और खद्दर पहनना स्वीकार किया। तब से खादी का प्रयोग शुरू कर दिया। प्रभु की लीला! उस दिन के बाद किसी ने मुझको खादी के बिना और कोई वस्त्र भेंट नहीं किया और न ही मुझे किसी को कहने की आवश्यकता पड़ी।

यज्ञ की समाप्ति पर प्रतिज्ञाएँ—इस वर्ष के यज्ञ में सब साधकों ने पूरी सावधानी से रहन-सहन अपनाया। कई-एक ने तो अपने आत्म-कल्याणार्थ विशेष साधन भी चुने। उनमें से भक्त सोनूराम जी बी०ए०-बी० टी० का वर्णन अत्यावश्यक है। मौन तो सब रहते थे, मौन अनिवार्य था, किन्तु उन्होंने दिन-रात मौन रहना प्रारम्भ कर दिया और क्रोध न करने का दृढ़ व्रत लिया। दूसरों ने अपने-अपने दोष-निवारण की प्रतिज्ञाएँ लीं।

जड़ वस्तुओं का भजन पर प्रभाव

पहली घटना—५ जून १९३३ की बात है, मैं लायलपुर में था। मुझे दो दिन, चौदस-अमावस का व्रत करना था। स्थान ढूँढने लगा। मास्टर प्रेम-प्रकाश जी ने, जो मेरे अच्छे प्रेमी बन गए थे, मुझे कहा कि उनके ऊपर-वाले चौबारे का उपयोग कर लूँ। ऊपर दो चौबारे थे। दोमंज़िला मकान था। एक कमरा जो उन्होंने अच्छा समझा, साफ़ कर दिया। मैं त्रयोदशी की रात के समय ऊपर जा सोया। गर्मी की ऋतु थी। प्रातः चौदस के व्रत में नियमानुसार बैठ गया। भजन के समय काम-वासना के बुरे-बुरे विचार

जागने लगे। बड़ा व्याकुल हुआ। समझ नहीं आई कि क्या हो रहा है। त्रयोदशी की रात्रि को किसी का खाया भी नहीं और मास्टर जी श्रद्धालु सज्जन थे, समाज के प्रधान। दिन व्यतीत हो गया। सायं हुई। मैं रात्रि को बाहर जा सोया। उठते समय मेरी दृष्टि दीवारों पर पड़ गई। देखते ही काँप गया। विलायत की स्त्रियों की नंगी तस्वीरें लगी हुई थीं। तुरन्त कारण मालूम हो गया। बाहर जाकर प्रार्थना करके सो गया। उधर प्रभु-लीला, मास्टर जी को भी अचानक विचार उठा—'ओह, वड़ी ग़लती की कि ऐसे कमरे में महात्मा जी को बिठाया। वे मेरे सम्बन्ध में क्या सोचेंगे?' नौकर को भेजा कि सोए हुए हैं, खबर न लगे, चुपके से उनका सामान सारा निकालकर दूसरे कमरे में लगा दो और सब तस्वीरें उतार दो!

प्रातः मैं जागा तो पहले बाहर ही बैठा रहा था। प्रकाश होने पर अन्दर गया तो न सामान था, न तस्वीरें। दूसरे कमरे में जाकर देखा तो सामान वहाँ रक्खा है। वहीं बैठ गया और दिन का व्रत अच्छा बीत गया। सायं को पूर्णमासी पर उठने पर यज्ञ करना था। मास्टर जी ने स्वयं ही क्षमा माँगी और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

दूसरी घटना—१९३५ में कराची में जब लाला चिमनलाल का यज्ञ कराया, तब भी वहाँ रहते हुए दो दिन का एक व्रत आ गया। कराची में एकान्त स्थान मिलना तो कठिन था, परन्तु लाला चिमनलाल को याद आ गया कि उनके बहनोई का मकान खाली है, चाबी उनके पास है। वह खुलवाकर एक कमरे में, जहाँ उनके बहनोई का ट्रंक आदि सामान रक्खा था, वह कमरा साफ़ करा दिया। मैं वहाँ बैठ गया। कराची में तो सब अन्दर सोते हैं, मैं भी अन्दर आ बैठा।

जब मैं भजन में बैठा तो रह-रहकर बड़े क्रोध में आ जाता। मन में यही आता कि तलवार से या बन्दूक से उड़ा दूँ। न मैं तलवार चलाना जानूँ, न बन्दूक चलाना। वह व्रत ऐसी ही क्रोधवृत्ति में गुज़रा। सायं को समाप्ति पर यज्ञ करने के लिए उठा और लाला चिमनलाल जी से चर्चा की कि व्रत ऐसा-ऐसा रहा।

तब उन्होंने बताया—'मकान तो अच्छा था, ख़ाली था। मेरे बहनोई पुलिस-इन्स्पेक्टर हैं, वह अवकाश पर गए हुए हैं।'

जब इन्स्पेक्टर साहब लौटकर आए, और लाला चिमनलाल से चाबियाँ लीं, तो उन्होंनें मेरा वृत्तान्त सुनाया। इन्स्पेक्टर साहब ने कहा—'वास्तव में मेरे ट्रंकों में मेरे पिस्तौल आदि शस्त्र रक्खे हुए थे।'

गणपति की सगाई

१५-८-३६ को टोबा टेकसिंह में पूज्य लाला नन्दलाल जी महाराज का जतोई से गणपति की सगाई की वधाई का एक तार दोपहर बाद आया। मैं प्रभु-दरबार में धन्यवाद गाने लगा—कहाँ इस सादा स्वभाव भोले-भाले गणपति की मँगनी के लिए मज़दूरों, ऋणी व्यक्तियों के हाँ प्रयत्न करते रहे, पर सफलता न हुई, और कहाँ आज प्रभुदेव ने ऐसी अपार कृपा की कि जतोई नगर के चोटी के साहुकार चौधरी आत्माराम पहूजा के यहाँ संयोग बना दिया जिन्हें मैं साहस करके पानी भी भेंट न कर सकूं! धन्य है प्रभु तेरी महानता! बूढ़ी माता और नानी की ख़ुशी की तो कोई सीमा न रही।

चारों वेदों के यज्ञ के नियम

टोबा टेकसिंह में चारों वेदों का यज्ञ १६-९-३६ को आरम्भ हुआ। १५-९-३६ को सब व्रतियों ने व्रत किया। उन्हें यज्ञ के नियम बताए गए और वे सर्वदा इन्हीं नियमों के आधीन व्रती बनते रहे एवं यज्ञ होता रहा। नियम इस प्रकार रहे—

(१) चारों वेदों के यज्ञ का व्रती वही बन सकता है जिसका यज्ञ से पूर्व एक मास का ब्रह्मचर्य हो।

(२) कम-से-कम गायत्री मन्त्र अवश्य जानता हो।

(३) मांस-मदिरा, भांग-तम्वाकू आदि मादक वस्तुओं का सेवन करनेवाला न हो, या सर्वदा के लिए त्याग करे।

(४) यज्ञ-काल में यम-नियम का पालन पूर्ण रूप से करना पड़ेगा।

(५) भूमि-शयन या तख़्त पर सोना होगा।

(६) यज्ञ-काल में हजामत नहीं करानी होगी।

(७) मौन रहना होगा।

(८) मन-वचन-कर्म से हिंसा नहीं करनी होगी। हो जाने पर तत्काल प्रायश्चित्त करना होगा।

(९) किसी भी साधक व्रती की वस्तु, साबुन, तेल, बाल्टी, अंगोछा आदि का बिना आज्ञा प्रयोग नहीं करना होगा, हो जाने पर भरी सभा में क्षमा माँगनी होगी और प्रायश्चित्त करना होगा।

(१०) यज्ञ, जप या आहुति देते समय यदि मन में किसी का अनिष्ट चिन्तन हो जावे तो तत्काल आहुति छोड़ देनी, और उठकर बाहर

चले जाना और लम्बे श्वास लेकर प्रभु-दरबार में पश्चात्ताप एवं प्रार्थना करना, चित्त शान्त होने पर आहुति देनी।

(११) स्वप्न में, या विचार में, किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष अथवा क्रोध आ जावे तो उसे भरी सभा में प्रकट करके क्षमा माँगनी, दूर हो तो लिखकर क्षमा माँगनी।

(१२) प्रार्थना करके रात को सोना और जागने पर प्रभु को नमस्कार करके स्वप्न याद करना। यदि नहीं आया तो प्रभु का धन्यवाद करना। अच्छा स्वप्न आया तो धन्यवाद करना, बुरा आए तो प्रायश्चित्त करके भूमि पर पाँव रखना।

(१३) भूमि पर पग धरते **"सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का पाठ करते जाना।

(१४) यज्ञशाला व उपासनालय में जाते समय भी **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का पाठ करके प्रवेश करना।

(१५) लोभ-वृत्ति से भोजन नहीं करना।

(१६) भोजन भी प्रार्थना के पश्चात्, फिर भोजन को अदृष्ट-भोग, प्रभु का प्रसाद समझकर लेना। भोजन में नमक-मिर्च, अच्छे-बुरे की निन्दा न करना।

(१७) जहाँ जिसकी चीज़ पड़ी हो उठाना नहीं।

(१८) आश्रम की किसी भी वस्तु को, चाहे वह व्रतियों के लिए है, अपने अधिकार से न उठाना। दूसरे का हक़ (स्वत्व) न खाना।

(१९) आश्रम को अपना घर समझना, आश्रम का गिला न करना।

(२०) दूसरे के आराम के लिए अपनी कुर्बानी (बलिदान) करना, स्वार्थी न होना।

(२१) अपने बर्तन आप साफ़ करना, अपना बिस्तरा आप बिछाना-लपेटना, अपना तख़्त आप उठाना या दूसरे की सहायता लेकर।

(२२) भोजन में साधनार्थ आपकी परीक्षा होगी—कभी नमक बिल्कुल न होगा, कभी बहुत पड़ा होगा; कभी नीम के पत्ते सब्ज़ी में डाल दिये जावेंगे, कभी वृक्षों के पत्ते सब्ज़ी में मिला दिये जावेंगे। दीर्घकाल में कभी-कभी ऐसी परीक्षा होगी। आपके मनोभाव चेहरों से जाने जावेंगे।

(२३) इस यज्ञ और जप में सब व्रतियों को व्रतरूप से रहना है—अपनी आत्म-साधना के लिए और संसार के कल्याणार्थ। यज्ञ का उद्देश्य वेद-प्रचार और संसार का कल्याण, जाप व यम-नियम के पालन का उद्देश्य अन्तःकरण की शुद्धि समझें और आहुति देवें।

(२४) अखण्ड जाप में सबको अपनी बारी पर स्नान करके उपासनालय में प्रवेश करना होगा: चाहे दिन हो या रात, यह तप करना होगा। अपनी बारी पर बिना उठाए-जगाए स्वयं ही जागकर उपासनालय में जाना होगा, यह दूसरा तप है।

(२५) भोजन तैयार हो जाने पर सबसे पहले भण्डारी रसोइये को भोजन कराया जायगा, फिर घण्टी बजने पर सब व्रती शीघ्रतम (एकदम) बैठकर भोजन करेंगे। मैं सबके खा चुकने के बाद भोजन किया करूँगा। आपको यदि मेरे समय का ध्यान और पास-लिहाज़ रहेगा, तो आप सब जल्दी ठीक समय पर एकदम पहुँचकर भोजन कर लोगे।

(२६) आत्मोन्नति का एक साधन यह भी है कि जितना हो सके व्रती सदा हँसता नज़र आए। यदि किसी की बात उसे नापसन्द भी हो तो त्यौरी चढ़ाने में संयम करे। यदि अधिक क्लेश उत्पन्न होने लगे तो शीघ्र ही अपने-आपको सहन कराने के लिए चन्द मिनट बाहर जाकर, लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगे, फिर आकर उससे क्षमा माँगे कि 'मुझमें आपके प्रति ऐसी घृणा हुई, मेरा दिल नापाक हो गया था, अब मैंने पवित्र कर लिया है।' उस दूसरे व्यक्ति को भी यदि आत्मोन्नति की सच्ची चाह से अपने दोष का अनुभव होने लगे तो वह भी पश्चात्ताप करे।

अखण्ड जाप

१९-९-३६ को प्रातः अखण्ड जाप आरम्भ हुआ। १६ व्रती बने जो यू० पी०, सी० पी०, पंजाब के मुलतान, डेरागाज़ी खाँ, रियासत बहावलपुर, झंग, लायलपुर और मुज़फ़्फ़रगढ़ ज़िलों के थे। सबके ज़िम्मे काम बाँट दिया गया।

संघड़-निवासी लाला ऊधोदास जी चुटानी बड़े पुराने वयोवृद्ध, अनुभवी और बहुत सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाले सज्जन थे, उपनिषदों के मर्म को बहुत जानते थे। मुझे इतनी समझ न थी। उनके ज़िम्मे अखण्ड जाप आदि के सब व्रतियों की बारी के क्रम का कार्य लगाया गया। वह बोर्ड पर प्रतिदिन लिख दिया करते। बोर्ड का तख़्ता उपासनालय के बाहर रक्खा रहता था।

पहले साल यह नियम था कि साधक अपनी कमाई खाकर साधना में सफल हो सकता है, इसलिए छः रुपये प्रतिमास रोटी का खर्च रक्खा गया। यज्ञ कुटिया की ओर से हो। ग़रीब-अमीर का कोई भेद न था। सब

व्रतियों को वारी-बारी से यजमान बनाया जाता। वेदपाठ प्रिय गणपति और मैं करते, उपदेश भी प्रतिदिन होता। पाजामा, पतलून, चमड़े की चीज़ से अन्दर यज्ञशाला में बैठने की मनाही थी। श्रोतागण बाहर यज्ञशाला के चबूतरे पर बैठते; कुछ नीचे भी।

यज्ञ का आरम्भ

यज्ञशाला में सबसे पहले 'ओ३म् ही ओ३म्' का कीर्तन होता, फिर गायत्री मन्त्र का कीर्तन, इसके पश्चात् लाला वज़ीरचन्द प्रार्थना-मन्त्र बड़े मधुर स्वर के साथ बोलते, उनकी अनुपस्थिति में लाला कश्मीरीलाल सहगल बोलते। मैं अपनी भाषा में, प्रार्थना में दिन, तिथि, वार, पक्ष, मास और सम्वत् आदि समय का 'वेदादिभाष्यभूमिका' में लिखे संकल्प के अनुसार परमेश्वर के गुण, उसकी दया से अपने सब व्रतियों के आत्मिक उत्थान की प्रार्थना करते हुए, देश के लिए प्रार्थना करता। फिर यज्ञ आरम्भ हो जाता। भक्तिभाव से जहाँ बाजा बजता, वहाँ खड़ताल और मँजीरे भी बजाए जाते। यह कई आर्यसमाजियों को अच्छा न लगता। वे एक-दूसरे से तो कानाफूसी करते, परन्तु मुझे कुछ न कहते, न ही कुटिया के यज्ञ में आते-जाते, वेद-मन्त्र और उपदेश सुनने में कभी भी न आते, बल्कि उनकी श्रद्धा सनातनियों और सिखों में बढ़ती जाती।

डॉक्टर ऋषिकेश जी—डॉक्टर ऋषिकेश जी वहाँ के बड़े आदमी थे। वे आर्यसमाज के हितैषी और कर्मठ कार्यकर्ता भी थे। उनका मेलजोल भी बड़ा था। वह साधारणतया ओ३म्-ही-ओ३म् कीर्तन की भी निन्दा करते कि यह तो पोप-लीला है, परन्तु मेरे साथ कभी चर्चा न करते। मुझे लोग आकर उनकी प्रतिकूलता के शब्द सुना जाते, परन्तु मेरे कार्य की विधि और वर्ताव सबसे प्रेम-आदर का बना रहता। मैं कभी किसी का विरोध न करता, न टीका-टिप्पणी करता। मैं अपने काम से काम रखता और वेद-प्रचार की धुन में रहता।

'ओ३म्' का कीर्तन आरम्भ करने का कारण—यह ओ३म् का कीर्तन क्यों आरम्भ किया? लाला फतहचन्द सहगल लीलावती के घर एक दिन मेरा भोजन था। उनके घर में जब भोजन खाने गया तो उनकी छोटी बच्चियाँ शान्ति और सुदर्शन ताली बजा-बजाकर कीर्तन करने लगीं—राम-राम हिक है, राम-राम दो, राम-राम तीन, राम-राम चार।' मैं सुनकर हैरान हो गया कि बच्चों के सब संस्कार वैदिक रीति से हुए; माँ, बाप,

नाना, मामा सब आर्यसमाजी, और ये राम-राम का कीर्तन करती हैं! उनके घर के ठीक सामने सनातन धर्म का मन्दिर था। वहाँ सब सत्संगी प्रातः बाजे पर और तालों बजाकर राम-राम का कीर्तन करते थे। मेरे दिल में आया कि बच्चों पर कितना जल्दी प्रभाव पड़ता है, जबकि सनातन-धर्म मन्दिर में न कभी लाला फतहचन्द जी गए, न कभी लीलावती, न ही बच्चे, परन्तु क्योंकि बच्चों को राग-रंग और किस्से-कहानी रुचिकर होते हैं इसलिए वे शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। सरल-स्वभाव जो होते हैं! मैंने बिना किसी के कहे-सुने और परामर्श किये 'ओ३म्' का कीर्तन आरम्भ करवाया। रहस्य तो किसी को बताया नहीं था, इसलिए खासकर डॉक्टर ऋषिकेश जी को खटका।

डॉक्टर ऋषिकेश जी के घर में ओ३म् का कीर्तन—कुछ काल गुज़र गया। एक दिन ऋषिकेश जी अपने घर रसोई में गए तो उनकी नन्हीं बच्चियाँ ताली बजा-बजाकर 'ओ३म् ही ओ३म्, ओ३म् ही ओ३म्' का कीर्तन कर रही थीं। वह सुनकर चकित रह गए! उनके मन में सन्तोष-सा आ गया कि बच्चों पर अपने-आप कुटिया के कीर्तन का कैसा प्रभाव हो गया! तब से उन्होंने इस बात का विरोध छोड़ दिया। उपदेश भी बड़े ध्यान से सुनते थे और गाँठ भी बाँधते थे।

डॉक्टर साहब का आर्यसमाज से लगाव—सन् १९२५ में वह टोबा टेकसिंह में आए थे। आर्यसमाज का बड़ा काम करते थे। नवयुवक थे। आर्यसमाज-मन्दिर में उन्होंने अखाड़ा भी बनवाया। स्वयं भी अखाड़े में उतरते थे, ताकि लोगों में आना-जाना बन जावे। समाचारपत्रों का वाच-नालय भी बनाया। एक हौज (टैंकी) बनाकर टूटियाँ भी लगवाईं, ताकि लोग स्नान करने के बहाने आवें तो आर्यसमाज की बातें उनके कानों में पड़ें।

मेरी गुस्ताखी—एक दिन मैंने गुस्ताखी की। कोई बात डॉक्टर जी ने कही तो मैंने कहा—'आप सब मुण्डे-खुण्डे जो हुए!' पर आफ़रीन (बलिहारी)! मेरे इन शब्दों को सुनकर सहन कर गए। परमात्मा की बड़ी कृपा हुई कि नापसन्द होने पर भी मेरे सत्संग में आते ज़रूर थे। मेरे लिए समाज में उपदेश बन्द करने की भी तजवीज़ (प्रस्ताव) करते, परन्तु प्रभुदेव ने उनकी सुमति बनाए रक्खी। सब बातें जानने पर भी प्रभु-कृपा से दिल में किसी के प्रति रोष पैदा नहीं हुआ। श्रद्धा से कुटिया पर व्रतियों

के आटे के लिए रात को आकर चक्की भी पीस जाते थे। यह थी अपार लीला मेरे प्रभु की !

यज्ञ की पूर्णाहुति व लंगर—पूर्णाहुति २८-११-३६ तदनुसार पूर्णमासी, १४ मार्गशीर्ष, सम्वत् १९९३ शनिवार को हुई। बाहर के मैदान में झाड़ू और लेपा दिलाकर नर-नारी, अमीर-ग़रीब, सेठ-साहुकार, बड़े-बड़े अफ़सर आए और भूमि पर बैठकर वही दाल-रोटी, यज्ञशेष लेकर बड़े प्रेम से खाते रहे। सहस्रों व्यक्ति थे।

धन्यवाद की प्रार्थना प्रभुदेव के दरबार में की गई। जिन-जिन सज्जनों ने यज्ञ में सेवा की, उनका धन्यवाद किया गया। डॉक्टर ऋषिकेश जी और लाला काशीराम जी को चारों वेद रूमाल में लपेटकर भेंट किये गए। चौधरी गुलाबराय को अपनी रचित पुस्तकें दी गईं। सेवा करनेवाले तो बहुत थे, सबने अपनी-अपनी शक्ति व श्रद्धानुसार सेवा की, परन्तु प्रतिदिन जो मेरे मन को प्रभावित करते रहे, उदाहरणार्थ डॉक्टर ऋषिकेश जी, गुलाबराय जी, गणेशदास जी, वल्लीराम, रखाराम, बाबू भगवानदास मंत्री आर्यसमाज और उनके भाई लाला गणेशदास जी, लाला कल्याणदास जी, महाशय दयालचन्द जी, लाला तोलाराम लोहेवाले, लाला गिरधारी लाल ट्रंकोंवाले, इन सबको दुपट्टे दिये गए। मैं जब-जब इन महानुभावों को देखता मेरी आँखें, मेरा मस्तिष्क उनके स्वभाव के सामने झुक जाता रहा। मैं रश्क (स्पर्धा) करता और प्रभु-दरबार में प्रार्थना करता कि मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझूंगा, यदि मुझमें डॉक्टर ऋषिकेश जी और गुलाबराय का-सा सेवाभाव तू उत्पन्न कर दे।

व्रतियों को मूँगफली व यज्ञ-प्रसाद अपने घर ले-जाने के लिए दिये गए। लाला चमनलाल जी के द्वारा दो प्रकार के ठप्पे बनवाए गए—'गायत्री मंत्र' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः···', दो पट्टों पर छापकर सबको दिये गए। मैं यज्ञ के वस्त्र अनसिले रखता—नीचे धोती-लंगोट और ऊपर एक पीली चादर जिसपर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और गायत्री मंत्र की छाप छपी हुई थी। इस वर्ष यज्ञ में दूर-दूर से आए दर्शक मण्डी में निवास करते रहे। लाला कल्याणदास जी सिंधी लोगों की सेवा करते रहे।

कर्म-भोग-फल का प्रत्यक्ष उदाहरण

एक बार सीतपुर के प्रतिष्ठित पुरुष लाला चन्दुराम बजाज कुटिया पर सत्संग की इच्छा से कई दिन के लिए पधारे। वह साहुकार, ज़मींदार,

क़ानून जाननेवाले बड़े नेक ऋषि-भक्त थे। अपने दो लड़कों को गुरुकुल कांगड़ी में स्नातक बनवाया।

ग्रीष्म ऋतु थी, मेरी कुटिया में बैठे थे। कर्म-फ़िलॉसफ़ी पर वार्तालाप कर रहे थे। उनके प्रश्नों के मैंने निम्न उत्तर दिये—

प्रश्न—सर्प आदि को मारना चाहिये या नहीं ?

उत्तर—साँप को बिना अपराध क्यों मारा जाय ?

प्रश्न—वह डसता है, हिंसक प्राणी है। ऐसे जीवों को मारना धर्म है।

उत्तर—निस्सन्देह वह हिंसक प्राणी है, परन्तु क्रोध से उत्पन्न वायु-मण्डल का ज़हर भी वही खाता है, वरना ज़हर खानेवाले ऐसे-ऐसे जन्तु प्रभु पैदा न करता तो हम तो विषयुक्त वायु से ही मर जाते। वह काटता है तो अपनी रक्षा के लिए, या प्रभु के हुक्म से काटता है, हमें दण्ड-फल भोगने के लिए। हम कुछ न कहें, हमारे दिल में उसके मारने का विचार ही उत्पन्न न हो तो वह हमको कभी न डसेगा। हाँ, यदि हमारे कर्म-फल-भोग में उसे प्रभु-प्रेरणा हुई है तो उसके डसे बिना बच ही नहीं सकते।

प्रश्न—क्या ऐसी बात सम्भव है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल यक़ीनी है।

प्रभु की लीला ही कहिये कि हमारे बात करते समय ही एक साँप मेरे तख़्त के नीचे दिखाई दिया।

मैंने कहा—देखिये, साँप आ गया !

रणवीर बहादुर लेट गए और पाँव उधर ही साँप की ओर पसार दिया।

मैंने कहा—लाला जी, आप क्या कर रहे हैं ? साँप की ओर पाँव पसार दिये ?

उन्होंने कहा—आपने अभी कहा था कि प्रभु की आज्ञा के बिना साँप कभी नहीं डसता। अगर मेरे कर्म-भोग में उस द्वारा डसना नहीं है तो वह बैठा रहेगा, मेरा क्या करेगा ! मुझे तो उससे वैर है ही नहीं !

मैं तो दिल में अवश्य थोड़ा-बहुत भयभीत हुआ कि उन्होंने जान-बूझकर लात पसारी है, परन्तु उनके दिल में कोई भय या शंका उठी ही नहीं। लेटे हुए बातें भी करते रहे। इसी बीच साँप न जाने कहाँ चला गया।

गुप्त प्रेरक सविता देव

सन् १९३६ में जब मैंने महाशय लोकूराम जी को कुटिया की तैयारी के लिए लगाया था तो काम न होता देखकर व्रत में समाज-मन्दिर में चिट्ठी ढाली थी। उसका कारण नहर का जल बन्द हो जाना था। कैसे निर्माण हो सके? मैं और महाशय मथुरादास जी कुटिया पर गए।

दफ़ेदार शेर मुहम्मद साहिब आए और कहा—"मैं बहुत रोगी था। रात्रि को मेरे पीर मुर्शिद वली अल्लाह ने स्वप्न में ज़ियारत दी (दर्शन दिये) और मुझे कहा कि 'तू बड़ा बेपरवाह है। मत समझ टेकचन्द हिन्दु है और तू मुसलमान! दोनों को एक ही रूप जान! उनको कष्ट हो रहा है और तू बेपरवाह लेटा पड़ा है?' जागने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि पीर मुर्शिद की ज़ियारत हो गई। यह देखने के लिए कि आपके लिए क्या करना होगा, मैं निर्बल होते हुए भी घोड़े पर सवार होकर आपकी कुटिया पर आया। नज़दीक व दूर तक चारों ओर गश्त की कि शायद लोग इधर मल फैला जाते हों, परन्तु ऐसा कोई चिह्न था नहीं, इसलिए मैं वापस चला गया; समझा, ऐसे ही स्वप्न होगा। रात को फिर दर्शन दिये और बड़ी डाँट-डपट की तो मैं डरा कि जाने क्या बात होगी! सो मैं अब आपके पास आया हूँ। आपको क्या कष्ट है?"

मैंने कहा—मेरा यज्ञ आरम्भ होनेवाला है, पानी बन्द है; पुराना भूसा ग़ारे के लिए नहीं है, काम बन्द है, काम करनेवाले निकम्मे बैठे हैं।

उसने कहा—अभी सब प्रबन्ध कर देता हूँ।

वह गाँव में गया। पुराने भूसे की गठरियाँ नौकरों के हाथ भिजवा दीं और कुछ मुज़ाइरे आए। उन्होंने खाल (छोटी नहर) के अन्दर गड्ढे कराए। इधर-उधर का जल सब गड्ढों में भर गया तो बोले—'अब सब काम कर लीजिये। और कोई आज्ञा हो तो पालन करूँ। मेरे लिए मेरे पीर की आज्ञा से आप उनके समान हो। कोई भी कष्ट हो, मुझे आज्ञा कर भेजिये, तुरन्त पूरा कर दिया करूँगा।'

सनातनधर्म-मन्दिर में गायत्री-कीर्तन

टोबा टेकसिंह में पहले गुरुद्वारे और शिवालय मन्दिर तो थे, परन्तु सनातनधर्म मन्दिर न था। पण्डित गोपालदत्त जी के त्याग-भाव और प्रभाव से मन्दिर बन गया। वह स्यालकोट की ओर के एक सज्जन थे जो

लण्डे भी पढ़ाते और लोगों को, बच्चों को अच्छी धार्मिक शिक्षा देते; बैण्ड-वाजे का काम भी सिखाते थे। उन्हें सब 'गुरु जी' नाम से पुकारा करते थे। वह सनातन धर्म मन्दिर के पुरोहित के रूप में काम करने लगे। चूंकि वह सब कार्य निःशुल्क करते थे, इसलिए उनका बड़ा मान था। मेरे पास भी आते-जाते थे।

एक बार समाज-मन्दिर में मेरे पास आए और बातचीत में मैंने उससे पूछा—'मन्दिर में क्या होता है ?'

उन्होंने कहा—'भगवान् कृष्ण की मूर्ति स्थापित है, गीता की कथा होती है।'

मैंने पूछा—'यह मन्दिर भी और मन्दिरों की न्याईं रहेगा या कुछ विशेषता भी होगी ?'

उसने कहा—'विशेषता कैसी ?'

मैंने कहा—'विशेषता है गीता पर आचरण करने की। माथा टेकने से भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं। आप तभी सच्चे गुरु होंगे, जब स्वयं आचरण करें और मन्दिर में आचरण करावें।'

उन्होंने पूछा—'क्या आचरण ?'

मैंने कहा—'भगवान् कृष्ण ने कहा है जो देवताओं को दिये बिना अन्न खाते हैं, वे देवताओं के चोर हैं। लोग मन्दिरों में माथा टेकते, कथा सुनते और चले जाते हैं, परन्तु हवन नहीं करते। मतलब यह कि आप सबको चोरी सिखाते व स्वयं करते हो।'

बात उन्हें लग गई; बोले—'मैं अब हवन करूँगा।'

मैंने कहा—'आप सभा से कह दीजिये, सबसे पहले हवन द्वारा प्रभु-पूजा होगी। फिर गायत्री-कीर्तन कराओ। भगवान् ने कहा है—'छन्दों में गायत्री मैं हूँ, वेदों में सामवेद हूँ।' यदि वेद न पढ़ें तो वेदमन्त्रों से हवन तो करें ! गायत्री से कीर्तन कराएँ, गायत्री का जाप करावें !'

दूसरे दिन वह मन्दिर में गए और कहा—'सबसे पहले तो हवन होना चाहिए। यदि आप लोग हवन न करो तो मैं अवश्य ही करूँगा, उसके पश्चात् कथा किया करूँगा।'

सनातनधर्मी बड़े श्रद्धालु होते हैं। उन्हें अपने पुरोहित गुरु पर बड़ा विश्वास होता है। सबने स्वीकार किया और नित्य प्रातः हवन के पश्चात् राम-नाम के कीर्तन के स्थान पर गायत्री का कीर्तन होने लगा। यही प्रथा उसके पश्चात् गोजरा और लायलपुर के मन्दिरों में चालू हो गई।

दूसरी समाजों पर कराची के यज्ञों का प्रभाव

कराची के यज्ञों से प्रभावित हैदरावाद-सक्खर के समाजवालों ने भी प्रिंसिपल साहिव को प्रार्थना की और मुझे ले गए। सन् १९३७ के मार्च मास में हैदराबाद सिन्ध में हकीम वीरुमल आर्य प्रेमी ने बड़े उत्साह से कमेटी के बाग़ (होम स्टैण्ड हाल) में यज्ञ कराया। फिर सक्खर, ग़रीबावाद कालिज-समाज ने बुलवाया; हकीम ड्यूमल के पास ठहरे। वह प्रधान थे। वह यजमान वने और २७ मार्च पूर्णमासी के दिन यजुर्वेद-पारायण यज्ञ आरम्भ हुआ और ३१ मार्च को सम्पन्न हुआ। यज्ञ व यज्ञ-सम्बन्धी उपदेशों का उन लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। लगभग सब व्रतियों ने प्रतिदिन यज्ञ और गायत्री-जप की प्रतिज्ञा की।

हकीम ड्यूमल के पुत्रेष्टि-यज्ञ के लिए तैयारी

हकीम ड्यूमल की सन्तान न थी। उसका साला हकीम दीपचन्द मन्त्री था। हकीम ड्यूमल बड़ा श्रद्धालु था। उसने पुत्रेष्टि-यज्ञ के लिए प्रार्थना की। मैंने कहा—'पुत्रेष्टि-यज्ञ की सामर्थ्य तो आपमें नहीं, हाँ, तुम दोनों स्त्री-पुरुष २४ लाख गायत्री का जाप करो, यम-नियम का पालन करो, भूमि पर शयन करो, एक समय आहार, दूसरे समय दूध लो, ब्रह्मचर्य भी निभा सको तो इसके पश्चात् यज्ञ करना, प्रभु-कृपा से अवश्य सन्तान होगी और वह संस्कारी सन्तान होगी। दोनों ने स्वीकार किया और आचरण करने लग पड़े।

यज्ञ द्वारा सन्तान-प्राप्ति—२४ लाख गायत्री-अनुष्ठान पूरा होने पर फिर से १८ से २० जनवरी १९३९ में हकीम ड्यूमल ने अपने घर पर यज्ञ कराया। उदम्बर (गूलर) के पात्र आदि तैयार कराए गए। 'संस्कार-विधि' में लिखी सर्व ओषधियों से विधि-पूर्वक यज्ञ कराया गया, और यज्ञशेष दोनों समय चला, घी में रोटी बनवाकर स्त्री-पुरुष दोनों को खिलाई गई। प्रभु-कृपा से गर्भ हो गया और नौ मास के पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ। नाम वेदव्रत रक्खा गया और वह बच्चा बड़ा ही संस्कारी गुणी निकला।

मुसलमानों द्वारा मांस-त्याग की प्रतिज्ञा

हकीम वीरुमल आर्यप्रेमी (हैदराबाद सिन्ध) की यज्ञ में बड़ी श्रद्धा हो गई। दूसरे वर्ष भी यज्ञ कराया। मध्य में उसी की पुत्री पार्वती का

विवाह आ गया। वीरुमल की शरीक-बिरादरी (जाति भाई) बुड़ी में थी। उसने अपने गाँव बुड़ी में ही यज्ञ करने की इच्छा की। वहाँ मुसलमानों की जनसंख्या बहुत थी।

एक स्थान नियत किया गया। यज्ञ-कुण्ड बनवाया। मैंने वीरुमल से कहा—'यहाँ के तो सब हिन्दू-मुसलमान मांस खाते हैं, यज्ञ कैसे होगा?'

वीरुमल ने अपनी पंचायत से प्रार्थना की। मुसलमान भाइयों ने सुना तो उन्होंने बहुत ही श्रेय कमाया। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि यज्ञ के दिनों तक कोई भी मांस न खावेगा; न घर में पकावेगा, न ही मांस बनाने बेचनेवाला कसाई मांस की दुकान खोलेगा। उनके व्यवहार से हिन्दू पंचायत लज्जित हो गई और सबने खुशी से प्रतिज्ञा की कि यज्ञ के दिनों में कोई भी गाँव में मांस न बनावेगा।

सन् १९३७ में पुत्रों के विवाह

सन् १९३६ का यज्ञ पूरा हो जाने, गणपति और लाजपत की सगाई हो जाने के बाद उनके विवाह की बातचीत का सिलसिला (क्रम) चला। मैंने उनके विवाह के अवसर पर आशीर्वाद दिलाने के लिए यज्ञ में आते समय पूज्य आचार्य अभयदेव जी की स्वीकृति करा ली। पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज, महाशय कृष्णकुमार पर बहुत मेहरबान (कृपालु) थे, और मुझपर भी दया-दृष्टि रखते थे। पूज्य स्वामी गिरि जी महाराज, पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज, पूज्य गुरु जी स्वामी कृष्णानन्द जी, इन सब महापुरुषों के सम्मिलित आशीर्वाद की ठानी और यह विचार भी किया कि महाशय मथुरादास जी, लाला चमनलाल जी अपने परिवार और नौकरों सहित चलें। शहर सुलतान के चौधरी साहिबान सेठ-साहुकार लोग थे और यह सब प्रबन्ध स्वयं अपने ज़िम्मे लेकर उन्होंने ठाना कि विवाह धूम-धाम से रचाए जावें।

प्रभु आश्रित ! तुम आडम्बर क्यों रचो ?

एक दिन टोबा टेकसिंह की कुटिया में बैठा मैं प्रभुचिन्तन व जप कर रहा था। सहसा अन्दर से आवाज़ उठी कि जब तुम प्रभु आश्रित हो, फिर तुम क्यों आडम्बर रचो? क्या प्रभु से कोई अधिक महात्मा है? इतने आइं पूज्य संन्यासियों को तुम कष्ट देना चाहते हो, केवल आशीर्वाद के लिए? क़मात्र प्रभुदेव का आशीर्वाद पर्याप्त जानो! तुम फ़क़ीर हो! फ़क़ीराना

भेष···फ़क़ीराना जीवन व्यीतत करते हो तो विवाह भी फ़क़ीराना रूप से सादा करो ! तुम्हारा इष्ट यज्ञ है, तुम यजुर्वेद का यज्ञ करके मुकुट वाँधो। किसी भी वड़े सेठ-साहुकार, मित्र-प्रेमी का ग्रासरा मत ताको ! किसी को भी विवाह का न्यौता मत दो ! न तुम किसी प्रेमी की नकद वस्त्र-ग्रन्न ग्रादि किसी प्रकार की सेवा-सहायता स्वीकार करो ! जिनके दिलों में ये भाव हैं कि हम बहुग्रों के गहने बना देंगे, उन सवको इन्कार कर दो ! लाला ठाकुरदास छावड़ा जिसने ४०० रुपया महाशय मथुरादास के पास गहनों के लिए ग्रपने भाग का रक्खा है, उसे शीघ्र वापस करा दो! गणपति ग्रौर लाजपत के श्वसुरों से कह दो कि हम बारात न लावेंगे। वर के साथ पुरोहित, एक मेरी वहिन ग्रौर पिता होगा, भाई भी शामिल न होगा। यज्ञ के दिनों में यज्ञशेष प्रातः-सायं जो बाँटोगे, वह शहर की बिरादरी को भाजी (मिठाई-भोजन ग्रादि) समझना।

ग्रन्तरात्मा की ग्रावाज़ पर ग्राचरण—यह तार ऐसी बँधी कि मैं उसी से फूला न समाया। कोई चिन्ता, फ़िक्र, भार ही न रहा। भजन-समाप्ति पर मैंने ग्रपने मित्रों, प्रेमियों को यही वार्ता सुना दी ग्रौर लाला ठाकुरदास जी को वलात् ४०० रुपए वापस कर दिये। मेरे ग्राचरण पर सब चकित हो गए। परन्तु उनको मेरे विचारों, ग्रादेशों, प्रेरणाग्रों में पूरा विश्वास था, इसलिए मौन हो गए।

मैंने ग्रपनी प्रेरणा के विचार गणपति ग्रौर लाजपतराय के श्वसुरों को लिखकर भेज दिये। जतोई से कोई उत्तर न ग्राया, परन्तु ग्रलीपुर से लाजपतराय के श्वसुर के भाई चौधरी कन्हैयालाल जी टोवा में पहुँचे ग्रौर मेरी कुटिया में बैठकर बोले—'यदि ग्राप बारात न लावेंगे तो दादा जी कहते हैं इसमें हमारी हत्तक (हेठी) है। हम पहली बारातों में ५-५, ६-६ सौ ग्रादमी वारात के ले भी गए ग्रौर ग्रपने घर उतारे भी (स्वागत किया), ग्रव विना वारात विवाह कैसा ? हमारी पोज़ीशन की लाज रक्खो, लोग क्या कहेंगे कि किस स्थान लड़की दी है जिन्हें वारात जुटाने की भी सामर्थ्य नहीं ?'

मैंने कहा—'यह गिला-शिकायत तो मेरी दरिद्रता की होगी, ग्रापका गिला तो नहीं ! ग्राप तो प्रभु-कृपा से सामर्थ्यवाले हैं। ग्रापको सब लोग जानते हैं, ग्रौर मेरी नादारी (दरिद्रता) को भी लोग जानते हैं। मैं फ़क़ीर (साधु) हूँ। मुझे ग्रन्दर-वाहर सचाई से काम करना है। यदि मैं ग्राडम्बर करूँ, मेरे प्रेमी बढ़िया काज रचावें तो लोग यह कहेंगे—टेकचन्द ग्रभी का

आश्रित का क्या ? पराये गाल पर चोट मार रहा है ! दूसरे, मेरी सन्तान भी सदा उनसे आँख नीची रक्खेगी कि अमुक-अमुक ने ज़ेवर बनवा दिये थे, इतना खर्च किया था, शादी रचाई थी। शादी बढ़िया करूँ तो भी शिकायत करेंगे, घटिया करूँ तो भी शिकायत करेंगे। हाँ, प्रशंसा करनेवाले भी होंगे कि फ़क़ीर था, अपना काम फ़क़ीरी के अनुसार किया, दिखावा नहीं किया। फिर यह तो अन्तरात्मा से आवाज़ उठी है, इसलिए मैं तो ऐसा ही करूँगा। आपकी आज्ञा के पालन में अपनी आत्मा का निरादर न करूँगा। दादा जी से मेरी ओर से क्षमा माँग लें। विश्वास रक्खें, आपका गिला न होगा।'

उन्होंने कहा—'सिद्धान्त रूप में तो मैं भी आपके विचारों से सहमत हूँ कि आप अपनी पोज़ीशन की रक्षा कर रहे हैं, परन्तु ज़माना ऐसा कभी नहीं आया। खैर, मैं आपका ही प्रतिनिधि बनकर दादाजी को मनवाऊँगा।'

चौधरी साहिब के मंसूबे

मैं कुटिया पर लोहड़ी के उपलक्ष्य में यजुर्वेद का यज्ञ १०-१-३७ से १३-१-३७ को पूर्णाहुति कराकर शाम की गाड़ी से रवाना हुआ और रात को १० बजे मुलतान, और १४-१-३७ को शहर मुलतान अपने चौधरी साहिबान के पास पहुँचा। मैंने उन्हें अपना सब वृत्तान्त, विचार, उद्देश्य सुनाए तो वह भी हैरान हो गए। चौधरी ठाकुरदास जी कहने लगे कि 'हम तो परस्पर विचार कर रहे थे कि महात्मा जी के दो पुत्रों का विवाह है, हम सब शामिल होना चाहेंगे, पीछे घर में कौन रहे ? हम तो इस विवाह के लिए क्या-क्या मंसूबे (इरादे) बाँधे बैठे थे और आपने सब पर पानी फेर दिया !'

माता-नानी की सहमति—वहाँ से अलीपुर महाशय कृष्णकुमार जी और उनके दादा जी से मिलकर अपने विचारों की स्वीकृति कराकर १६-१-३७ शाम को जतोई नानी व माता जी के चरणों में पहुँचा। उनके सम्मुख अपने विचारों को प्रकट किया कि 'लाज अब आपके हाथ में है। मैं यज्ञ करके ही विवाह करना चाहता हूँ। मैं अपनी फ़क़ीराना स्थिति के अन्दर काम करूँगा, तिलभर ऊपर न चढ़ूँगा।'

उन्होंने कहा—'बेटा ! हम तो सदा से तेरा साथ देती और निभाती आई हैं। अपनी बहिन-बुआ को बुलाकर उनसे विचार-विमर्श कर लो,

क्योंकि विवाह पर अपने सगे-सम्बन्धियों को बुलाना है। सबसे समीपस्थ सम्बन्ध तो बहिन-बुआ का और उनके परिवार का है।'

बुआ-बहिन की सहज स्वीकृति--मैंने उन दोनों को अपने घर बुला भेजा और उनसे कहा कि 'गणपति, लाजपत दोनों का विवाह है। मैं फ़क़ीर आदमी हूँ, मेरे पास ७५ रुपये हैं; यज्ञ करके शादियाँ करनी हैं और मैंने शादी का कुछ भी खर्च नहीं करना। इन्हीं ७५ रुपयों में ही निभाना है। यदि मेरी प्रतिज्ञा और धारणा की आप लाज रख सकें, तो आप शादी का सब काम अपने हाथ में लेकर निभावें। नेकी-गिला सब आपके हाथ में है। यह बात भी आप ध्यान में रक्खें कि मेरी माँ, मेरी नानी मेरी हैं, मैं उनका जाया हूँ, और आप दोनों मेरे दादा व पिता का रक्त हैं। आपकी बहुओं को मैं न बुलाऊँगा तो आप दोनों की बहुएँ हमारे रक्त की लाज नहीं रक्खेंगी। वे बाल-बच्चेवाली हैं। बच्चों में कभी किसी दिन लड़ाई-झगड़ा हो गया, या किसी के बच्चे को न्यून-अधिक वस्तु मिली और बच्चों के लिए वे आपस में लड़ पड़ीं तो मेरा यज्ञ विध्वंस हो जाएगा, शान्तिपूर्वक काम न होगा। आपको मेरी लाज का विचार रहेगा। उनको मेरी लाज से क्या? इसलिए यदि आपको यह भी स्वीकार हो, अपनी बहुओं का गिला अपने सिर पर रख सको और दुनिया की टीका-टिप्पणी को सहन कर सको तो मेरा काम निभ सकता है, अन्यथा नहीं। मैंने देना-लेना भी कुछ नहीं--न मैं मुकुट पर किसी सम्बन्धी से लूंगा, न मित्र-दोस्त से जिनको मैंने दिया हुआ है। क्योंकि, नगर का प्रतिष्ठित व्यक्ति होने से जब फिर मैं १९१५ से जतोई आया, हर एक के विवाह पर स्थिति-अनुसार देता रहा। परन्तु अब मैं किसी से न कुछ लूंगा, न कुछ दूंगा।'

उन्होंने मेरी सब बातें हर्ष से स्वीकार कर लीं और कहा—'हम अपने जिगर का साथ देंगी, हमें अपनी बहुओं या लोगों के गिला की परवाह नहीं!'

गणपति का विवाह १५-२-३७ को, लाजपत का विवाह १७-२-३७ को हुआ। तीन आदमी दोपहर को गए और रात को १० बजे तक डोली लेकर जतोई पहुँच गए।

मैंने प्रभु-दरबार में प्रार्थना की कि मेरी सन्तान और बहुएँ मेरी बूढ़ी माता व नानी की सेवा करें। पितृ-ऋण केवल सन्तान पैदा कर देने से पूरा नहीं होता, अपितु माता-पिता की सेवा आदि से, आशीर्वाद लेने से चुकता है। प्रार्थना में ये शब्द भी कहे—'हे भगवान्! मेरी सन्तान और

वहुएँ बूढ़ी माताओं की सेवा दिल से करें, कभी उनसे रुष्ट होकर कड़वा न बोलें। मैं यह जानता हूँ, कोई भी वहू या सन्तान मेरी माता को दुःखी करे तो उससे नाग्रकार (अयोग्य) सन्तान की ज़रूरत नहीं।'

यज्ञ की समाप्ति पर मैंने गणपति की धर्मपत्नी रामदेवी और लाजपत की धर्मपत्नी विद्यावती से कहा—'वेटियो! तुम मेरी पुत्रियाँ हो। जैसे तुम अपने पिता से घूँघट नहीं निकालती हो, ऐसे मुझे पिता जानकर मत निकालो! यदि तुम मुझको वदमाश समझो तो ज़रूर घूँघट निकालो। मैं तुम्हारा पिता हूँ, तुम्हारा श्वसुर। यह महाशय मथुरादास बैठा है, इसे श्वसुर समझना!'

वहुओं ने घूँघट उतार दिया।

मैंने २०-२० रुपए उनको दिये—'इसे अपनी वरकत (भाग्य-वृद्धि) की पूँजी समझना और अपने पास ही पवित्र भावना वनाकर, Deposit (सुरक्षित) जमा रखना।'

महाशय मथुरादास जी ने भी शायद २०-२० रुपए दिये। लाला फ़तहचन्द सहगल भी टोवा से पहुँच गए थे। उन्होंने ५ या १० रुपए दिये।

मैंने कहा—'अब तुम्हारी वरकत (भाग्य) आरम्भ हो गई है। याद रखना हम ग़रीव आदमी हैं; माताएँ बूढ़ी हैं। तुम वड़े घराने से आई हो, फिर भी माता-नानी को काम न करने देना! आज ही से चौका का काम सँभाल लेना! सेवा करना!'

समझाकर मैं बाहर चला गया। दिन को वहिन-बुआ ने उन्हें काम करने नहीं दिया।

रात को वापस आया तो वहुएँ सो गई थीं। मैंने कहा—'कल प्रातः २०-२-३७ सीतपुर जाना है। मेरी धारणा थी कि पहले ही दिन वहुओं के हाथ का भोजन करूँगा। खैर, अब तो मैं उनके हाथ का ही खाऊँगा।'

दोनों बहुएँ खुशी से उछल उठीं। एक ने सब्ज़ी बनाई, दूसरी ने रोटी बनाई। रात को मैं खाकर सो गया।

सारा संसार अपना परिवार है

१-४-३७ को भाई भसरमल का गृहप्रवेश-संस्कार हुआ। सायं ५ वजे गाड़ी से रवाना होकर ११ बजे रात कराची पहुँचा। भसरमल वड़ा अच्छा श्रद्धालु पुरुष था, मगर उसने किराया का न पूछा, न दिया। यात्रा-

मार्ग में मेरे दिल में क्षोभ वना रहा, जिसे मैंने २-४-३७ को डायरी में प्रार्थनारूप में लिखा। भजन-समय भी वही क्षोभ सताता रहा। मन को समझाता, मगर बाज़ न आता। वड़ा उतार-चढ़ाव रहा। प्रभु से बार-बार कहता—'तेरी अपार दया है। जिस वस्तु को मैंने त्याग दिया है, या प्रतिज्ञा की हुई है, या लाभदायक-से-लाभदायक वस्तु भी जिन्हें मैं बोझ समझता हूँ या अनावश्यक प्रयोग समझता हूँ, उनके न मिलने पर, या किसी के न पूछने पर मुझे बड़ी ख़ुशी होती है और शुक्रिया अदा करता हूँ; मगर जहाँ मैं अपने लिए आवश्यक समझता हूँ और दूसरे का कर्त्तव्य समझता हूँ, इसमें जब दूसरा उपेक्षा (बेपरवाही) कर देता है, जान-बूझकर, या मेरी वृत्ति न लेने की समझकर, या मेरे किसी मित्र-जानकार से मेरी बात पूछकर, और फिर जब उनको आशा के प्रतिकूल पाता हूँ तो अवश्य मुझे खटकता है। आज मैं बहुत अनुभव कर रहा हूँ।'

चुग़ली-निन्दा न करने का व्रत

इस व्रत व यज्ञ में, जो १९-९-३७ से १८-११-३७ तक हुआ, अण्य साधनों के साथ निन्दा-चुग़ली न करने का विशेष रूप से आचरण हुआ। इन दो मासों में मैंने एक बार किसी सन्त-महात्मा के बारे में बात तो सत्य कही, परन्तु मुझे बाद में बहुत पश्चात्ताप हुआ। प्रभुदेव से प्रार्थना की कि मेरी साधना में यह बाधक है। सावधान हो गया।

स्वप्न का पश्चात्ताप

५-३-३८ को भजन करते समय ऊँघ आ गई तो एक स्वप्न आया कि चारदीवारी का खोला (टूटा मकान) है, उसमें थोड़ी-सी कनक (गेहूँ) बोई गई है, सिट्टे छोटे-छोटे और कनक भी छोटी-छोटी बिखरी हुई है, क्यारियाँ खाली पड़ी हैं। मैंने एक सिट्टी तोड़कर मुख में डाल ली। गया तो मैं किसी बूटी की खोज के लिए था। उधर एक वृद्ध माता मार्ग पर आई और कहा—'ऐ बाबा! सिट्टे तो न खा! पहले ही फ़सल नहीं हुई!' मैंने हाथ जोड़कर कहा—'माता, क्षमा करो! मैं बूटी देखने आया था।' वह सिट्टी भी शीघ्र मुँह से निकाल डाली। तभी नींद खुल गई। बड़ा चकित हुआ कि यह बुरा संस्कार कहाँ से आ गया? अपने भूतकाल पर दृष्टि डाली। १४ वर्ष की आयु के पश्चात् का कोई कर्म ऐसा सामने नहीं आया। स्यात् बाल्यकाल या युवक-समय का संस्कार रहा होगा! बहुत पश्चात्ताप हुआ।

तेरी रज़ा पर राज़ी रहूँ

दो मास का अदर्शन मौन व्रत किया और आहार अपनाया फल व कच्ची सब्ज़ी, गाजर-मूली आदि। मेरे प्रेमी मित्र महाशय मथुरादास के ज़िम्मे सेवा लगी। चौधरी गुलाबराय (जो उनकी दुकान पर तोलनेवाला था) बहुत सेवा करनेवाला था। उसने कहा कि आप निश्चिन्त रहें, यह सेवा मैं करूँगा।

कुछ दिन पश्चात् महाशय कृष्णकुमार जी ने गुलाबराय से कहा, 'मैं तो प्रतिदिन सायं को कुटिया पर जाता हूँ, सन्ध्या वहीं करता हूँ। आपके काम के दिन हैं, आप इस कार्य की चिन्ता न करें; मैं ही सब्ज़ी-फल कुटिया पर प्रतिदिन पहुँचा आया करूँगा।'

वह भी निश्चिन्त हो गए कि महाशय कृष्णकुमार जैसा भक्त और ज़िम्मेदार व्यक्ति यह काम अपने ऊपर ले रहा है। महाशय कृष्णकुमार जी प्रतिदिन सब्ज़ी आदि रख जाते रहे।

एक दिन वह माल लेने लायलपुर चले गए। किसी को सूचना न दी, इस विचार से कि सायं की गाड़ी से वापस आ जाऊँगा और फल-सब्ज़ी पहुँचा दूँगा, लायलपुर से लेता आऊँगा, गाड़ी से उतरते सीधा कुटिया पर चला जाऊँगा। प्रभु-लीला ऐसी रही कि वह शाम को वापस न आ सके। मेरा यह दस्तूर (नियम) था कि मैं कभी भी आई हुई वस्तु को एकदम समाप्त नहीं करता था, चाहे वह पूरे तोल से कम भी हो। गाजरें बची पड़ी थीं। मैंने कुछ गाजरें खा लीं और शेष रख दीं।

दूसरे दिन दोपहर तक कोई नहीं आया। सायं को वे गाजरें भी समाप्त हो गईं। एक जून की जगह चार जून तो निभा लीं। तीसरे दिन भी दोपहर तक कोई न आया। मेरे पास अब खाने को कुछ न था। कई बार कोठा (ऊपर) देखने गया।

अदृष्ट भोग

दिन ढलने को आया तो मैं कुटिया के बाहर निकला। सामने दीवार पर दृष्टि पड़ी कि कोई वस्तु रस्सी से लटकी हुई है। दरवाज़ा बाहर से बन्द रहता था, ताला लगा होता था। महाशय मथुरादास के पास चाबी होती थी। सेवा करनेवाले महाशय जी से चाबी लाते, चीज़ें रखकर फिर ताला बाहर से बन्द करके चाबी महाशय मथुरादास जी को लौटा देते। मैं समय पर उठा लाता और अन्दर ही रहता था।

मैं दीवार के पास गया। देखा कि दीवार से लटकी रस्सी के साथ एक लिफ़ाफ़ा भी बँधा हुआ था। लिफ़ाफ़े में कई प्रकार की सब्ज़ी और फल थे। लिफ़ाफ़े के ऊपर लिखा था कि 'मैं दानापुर (पटना) से व्यापार के लिए मण्डी टोबा टेकसिंह में आया था। आपके दर्शनों की इच्छा भी हुई। कुटिया का बाहर से दरवाज़ा बन्द पाया। मण्डी में महाशय मथुरादास जी से पता चला कि आप अदर्शन मौनव्रत में हैं। मण्डी से रस्सी, कील, लिफ़ाफ़ा लेकर आया और धीरे से यहाँ लटका दिया। कृपया अवश्य स्वीकार कीजिये!'

यह पढ़कर प्रभु पालनहार की दया, लानेवाले की श्रद्धा देख, विश्वम्भर का धन्यवाद किया।

चौथे दिन महाशय कृष्णकुमार वापस आए। तब उनकी आपस में चर्चा हुई। क्षमा माँगने का पत्र लिखा, तब यह वृतान्त पता चला। महाशय मथुरादास जी गुलाबराय से भी नाराज़ हुए और कृष्णकुमार से भी। फिर कहा कि अब मैं आप पर विश्वास नहीं करता, स्वयं सेवा करूँगा।

लाला रामचन्द जी व लाला जोधाराम की अपूर्व श्रद्धा—लाला रामचन्द मनचन्दा और लाला जोधाराम जी बुद्धिराजा दोनों किला गुज्जरसिंह में रहते थे। उनकी आपस में बड़ी प्रीति थी। रेलवे में क्लर्क थे। मेरे बड़े प्रेमी बन गए। उन दोनों की श्रद्धा इतनी बढ़ी कि लाला रामचन्द मेरी पुस्तकों को अपनी जेब से रुपया निकाल छपवाते, पुस्तक-विक्रेताओं के द्वारा बेचने का प्रबन्ध करते और स्वयं भी थैले में रखकर दफ़्तर ले जाते और ख़ूब प्रचार करते।

ठेकेदार भी सत्संग से प्रभावित—किला गुज्जरसिंह में चौधरी नानकचन्द जी बड़े अमीर और गवर्नमेंट के विख्यात ठेकेदार थे। बहुत स्थानों पर उनका सरकारी कार्य था। वह मदिरा में मस्त रहते थे, मांस भी ख़ूब खाते थे। उनका एक भाईवाल था, बड़ा नेक व्यक्ति था। वही ठेकेदारी के सब कार्यों का प्रबन्ध करता था। संयोग से वे दोनों मेरे प्रेमी हो गए। मांस-मदिरा बिल्कुल त्याग दिया। सिगरेट-हुक्का भी छोड़ दिया। सत्संग में आने लगे। ऐसे प्रभावित हुए कि अपने घर में यज्ञ-सत्संग कराया। सब परिवार नित्यकर्म, हवन और जाप में लग गया। बड़े श्रद्धालु व प्रेमी भक्त बन गए। अपनी लड़की के विवाह पर ३०-४-३९ से ९-५-३९ तक यजुर्वेद का यज्ञ कराया और विवाह भी वैदिक रीति से कराया।

वह टोबा टेकसिंह के वार्षिक यज्ञ में सम्मिलित हुए। ख़ूब सेवा की।

एक दिन मैंने उपदेश में कहा--"नौकरों को भी आराम देना चाहिए। जो अमीर लोग या अधिकारी लोग सो जाते हैं और नौकर को आज्ञा देते हैं कि वह बारह बजे रात को दूध पिलाया करे, वे नौकरों को बेआराम करते हैं; अपने घरवालों को भी असमय बेआराम करते हैं; वे पाप करते हैं। नौकरों व काम करनेवालों को भी मान व आराम देना चाहिए।"

झट चौधरी नानकचन्द जी ने उठकर कहा, "मैं असमय दूध पीता हूँ। आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि भोजन के साथ ही दूध ले लिया करूँगा! नौकर को असमय बेआराम न करूँगा। अपने आराम की भाँति उनके आराम का भी ख़याल रक्खूँगा।"

एक साधु कराची गया। गाड़ी रात को नौ बजे पहुँची। प्रेमी स्टेशन पर आए हुए थे। एक उन्हें अपनी कार में बिठा घर ले गया। घर-वालों ने भी अच्छा सत्कार किया। गृहपति नवयुवक बड़ा धनी, बड़े कारोबारवाला, शिक्षित, धर्मात्मा, हँसमुख, आस्तिक, प्रभु-पुजारी था। घर में दो देवियाँ थीं, एक उसकी धर्मपत्नी थी, दूसरी देवी उसकी माता की आयु की थी जो प्रणाम कर गई।

गृहपति—'बेबे जी ! महाराज के लिए भोजन बनावें !'

बेबे जी--'बहुत अच्छा।'

साधु समझा कि सम्भवतः बुआ या मौसी होगी, कराची में उन्हें बुलवाया होगा।

थोड़ी देर में गृहपति स्वयं थाली लाया और साधु के सामने रक्खी। साधु हैरान कि पहले तो घर में कई नौकर थे, अब स्वयं सेवा कर रहा है। कहा कि—'आप भी बैठें, हमारे साथ खालें, नौकर लाता रहेगा।'

गृहपति—'मैं तो खा चुका हूँ। गाड़ी देर से आती है और आज तो लेट भी थी। नौकर सब समुद्र पर गए हुए हैं। पंजाब से दो बड़े अफ़सर मेरे पिता जी के मित्र आए हुए हैं। मैं भी रात को समुद्र-तट पर उनके पास रहता हूँ। आज आपके लिए यहाँ रह गया। मैं लाऊँगा, आप खाइये।'

साधु रोटी खाता रहा। रोटी के ग्रास-ग्रास में दुःख-दर्द की मानो पूर्ण कथा भरी थी। ज्यों-ज्यों साधु खाता, उसके दिल पर उदासी व शोक का प्रभाव होता जाता। कुछ समझ में न आया। जब भोजन कर चुका, हाथ-मुँह धोकर बैठा तो पूछा—'यह बेबे जी कहाँ से पधारी हैं ? आपकी मौसी हैं या बुआ जी ?'

गृहपति—'बेबे जी बड़ी पवित्र माता हैं। इनकी कथा दुःखमय है। हैं तो पंजाब की, किन्तु अब यह बिलोचिस्तान में थीं। इनके घर-परिवार में

१६ आदमी थे—दो ग्रेजुएट पुत्र बी०ए० और एम०ए०, उच्चवंशों की लड़कियाँ वधुएँ, पोते-पोतियाँ और दामाद थे। पति लखपति थे। वड़ा व्यापार चलता था। ग्रेजुएट पुत्र स्वयं धंधे में काम करते। मोटर-गाड़ियाँ, नौकर-नौकरानियाँ, सब घर में थे। कई क्लर्क सेवक थे। जाति से ब्राह्मण थे। माता जी घर का सब नियन्त्रण रखती थीं। कभी हाथ से न पानी भरा, न रोटी पकाई; आँख के संकेत व जिह्वा के तनिक इशारे से नौकर सब काम कर देते थे। वीसियों वर्ष इस जीवन के खिले उद्यान में गुज़ारे। सदा स्वस्थ रहीं। कभी आँख में दर्द तक न हुआ। प्रभु के विचित्र रंग हैं। भूकम्प आया और सारे परिवार को निगल गया। केवल यह माता जी मलबे में से ज़ख्मी हालत में ज़िन्दा निकलीं। कोई हाल पूछनेवाला न बचा। स्त्री-जाति…सुख में जीवन गुज़रा। अब नितान्त अकेली। घायलों की ट्रेन में पंजाब आ गईं। जब लोगों का सामान निकाला गया तो सबको सूचनाएँ दी गईं, इन्हें भी सूचना पहुँची। इनकी वहू का भाई वहाँ पहुँचा और डेढ़ लाख का चैक सरकार से इनकी मलकीयत का लिया और भाग गया। यह सुपरिंटैंडैंट के पास पहुँचीं तो उसने कहा कि अमुक आदमी आपका डेढ़ लाख का चैक ले गया है। यह बेचारी ढूँढ-ढूँढकर परेशान हो गयीं। न खाने को रोटी, न पहनने को कपड़ा, न रहने को मकान। कराची में किसी के घर नौकरानी बनकर रहीं। कई मास इनसे काम करवा लिया। जब इन्होंने वेतन माँगा तो घर से बाहर निकाल दिया। रोती हुई हमारे घर में आयीं: मेरी माता जी मौजूद थीं। इनकी कहानी सुनकर वह भी रो पड़ीं। उन्हें दया आई; कहा—हमारे घर में टिक जाओ बेबे जी! मैं पंजाब जा रही हूँ। यह मेरा पुत्र, यह मेरी बहू, यह छोटी-सी बच्ची तेरे पास हैं। मेरा पुत्र दिन में दुकान पर चला जाता है, पीछे मेरी बहू अकेली रहती है। आप उसके साथ रहोगी, छोटी बच्ची को भी खिलाती-पिलाती रहोगी। जो कुछ हो सकेगा, हम आपकी सेवा करेंगे। तब से मैं इन्हें बेबे जी पुकारता हूँ। समुद्र पर कई रातें रहने पर भी मुझे घर की निश्चिन्तता रहती है।'

यह बात पूरी हुई तो बेबे जी आ गयीं और कहा—'महाराज! मैं बहुत अशान्त हूँ। मेरा कलेजा फटता है। मुझे कोई उपदेश दो ताकि मुझे शान्ति प्राप्त हो!' यह कहकर रोने लग गयीं।

गृहपति ने कहा—'बेबे जी! आप धैर्य धरो, रात बहुत हो गई है, इनको आराम करने दो; प्रातः यहाँ ही हैं। आपको शान्ति का उपदेश देंगे।'

बेबे जी बेचारी उठीं; और क्या कहती सिवाय इस बात के कि मैं ही कहूँ कि 'वह बड़ा जबरदस्त है।'

मौन व अनशन से समाज में पूर्ण एकता

कराची में दस दिन का व्रत करने के पश्चात् प्रिंसिपल साहिब अपने स्कूल की ग्रीष्म ऋतु की छुट्टियों के कारण क्वेटा ले गए। कॉलिज-समाज में यज्ञ का आयोजन कराया। स्कूल में यज्ञ हुआ। तब वहाँ के मुख्याध्यापक बाबू त्रिलोकचन्द जी थे जो पहले कराची में प्रिंसिपल के आधीन काम कर चुके थे। ४-७-३८ से ८-७-३८ तक यजुर्वेद का यज्ञ हुआ। यज्ञ-समय मुझे मालूम हुआ कि समाज में पार्टीबाज़ी है। यज्ञ कराने में तो सब सहमत हो गए, मगर कई सदस्य अपना मान चाहने के लिए गड़बड़ करने लगे। वे आपस में शान्ति का वातावरण न रहने देते थे। मैंने अनशन व्रत कर लिया, मौन हो गया और जप करने बैठ गया।

एक दिन व्यतीत होने पर सबको बहुत चुभा। प्रभु-कृपा से ऐसा प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप किया कि सब एक हो गए।

कॉलिज-समाज ने ठहराना चाहा, परन्तु मुझे टोबा टेकसिंह के यज्ञ के लिए जाना था, नहीं रुक पाया। बहुत धन देना चाहा, वह भी मैंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि 'समाज का धन चन्दों का होता है, न जाने कैसी कमाई हो! टोबा के यज्ञ में अशुद्ध कमाई की आहुति नहीं स्वीकार की जाती।'

शुद्ध कमाई से यज्ञ द्वारा अन्तःकरण की पवित्रता

अब कुटिया टोबा टेकसिंह का चारों वेदों का वार्षिक यज्ञ का समय निकट आ गया था। समाचारपत्रों में सूचना, विज्ञापन और पत्र-व्यवहार करना आवश्यक था। भक्त सोनूराम जी के कुटिया पर आकर सहायता करने से यह काम होता था।

उस अवसर पर मैंने 'वैदिक विनय' में यज्ञ-सम्बन्धी एक मंत्र पढ़ा कि शुद्ध कमाई से किया हुआ यज्ञ अन्तःकरण को पवित्र करता है। वह मंत्र अब पूरा याद नहीं, उसका निचोड़ इतना याद है। समाचारपत्रों में सूचना दिलवाई कि जिन सज्जनों को अपनी कमाई में पूर्ण शुद्धता का विश्वास न हो, वे कृपा करके यज्ञ में अपनी कमाई भेजने का कष्ट न करें। पूर्ण विश्वस्त शुद्ध कमाई से ही यज्ञकुण्ड में आहुति डाली जावेगी।

श्रद्धालु प्रेमी रुष्ट हो गए—९-९-३८ को पूर्णमासी पर चारों वेदों का यज्ञ आरम्भ हुआ। भिन्न-भिन्न स्थानों के पुराने व नए व्रती सम्मिलित हुए। इस वर्ष बहुत-से व्रतियों ने चान्द्रायण व्रत भी किया। पृथक्-पृथक्

सबके लिए घास-फूस की कुटियाएँ तालाब की ओर वाली भूमि पर बना दी गईं।

यज्ञ में अपनी कमाई की आहुति देनेवालों की बहुत व पूरी सावधानी की जाती। एक दिन मेरे श्रद्धालु प्रेमी मास्टर प्रेमप्रकाश अपनी मोटर कार पर लायलपुर से आए और एक कनस्तर (पीपा) घी का और शायद सामग्री भी थी, भेंट करने के लिए कुटिया में पधारे। मैंने हाथ जोड़कर क्षमा माँग ली। वह बड़े व्यक्ति थे, उनको अप्रिय लगा, अपना अपमान समझा, रुष्ट होकर चले गए।

कुटिया में अखण्ड अग्नि की स्थापना

उस वर्ष का यज्ञ प्रायः राज्य-कर्मचारी, जो घूँस न लेते थे और आढ़ती-दुकानदार जिन्हें अपनी कमाई में विश्वास था, उनके निमित्त से हुआ। भक्त सोनूराम की इच्छा हुई कि अखण्ड अग्नि रक्खी जावे और उत्तरदायित्व भी लिया कि दोनों समय यहाँ हवन करूँगा, अग्नि को स्थिर रक्खूँगा, तब से अखण्ड अग्नि सन् १९४७ तक चलती रही। जब मैंने १३ अप्रैल १९४७ को संन्यास ग्रहण किया, तब शान्त की गई।

प्याज़ के पकौड़े : अद्भुत दवा—भ्रमण-काल में मुझे अतिसार हो गया। तब डॉक्टर साहिब ने कहा, यहाँ का जल आपको अनुकूल नहीं है, आप प्याज़ का प्रयोग करें। लाला रामचन्द्र जी की माता जी ने मुझे प्याज़-वाले पकौड़े बनाकर खिलाए, दस्त बन्द हो गए।

बिच्छू बूटी—एक दिन जाते-जाते माता जी का हाथ एक बूटी को लग गया। वह दर्द से व्याकुल हो गईं। माता ने कहा—'वापस चलो, दवाई करें, बिच्छू के डंक की न्याईं दर्द है।'

डेरा पर गए तो डॉक्टर या किसी ने कहा—'इसकी दवा तो साथ में खड़ी रहती है। भगवान् की लीला है कि यह बिच्छू बूटी कहलाती है और इसका इलाज है जंगली पालक के पत्ते ऊपर मल देना। ये दोनों खुदरौ स्वयम्भू, (अपने-आप उग आनेवाली) हैं और पास-पास उगती हैं।'

हमने पालक लगाई तो दर्द जाता रहा। अभिप्राय यह कि पर्वत पर बिना जाने किसी बूटी को हाथ न लगावें।

लाला रामचन्द्र के घर सीमन्तोन्नयन-संस्कार—२१-४-४० को चौदश शुक्ल-पक्ष को लाला रामचन्द्र के घर सीमन्तोन्नयन-संस्कार कराया। संस्कार करते समय घी में मुख देखने का समय आया तो मैंने कहा—'यदि

गर्भिणी एकाग्रचित्त होकर पवित्र अन्तःकरण की शुद्ध भावना से घी में देखने का प्रयत्न करे तो जैसा मंत्र आदेश करता है कि 'प्रजां पश्यामि', वह अपने गर्भगत सन्तान को ठीक वैसे ही देख सकती है जैसे एक्स-रे (X-Ray) से देखा जाता है कि लड़का है या लड़की, किस आकार का है, कौन-सा उसका धब्बा या चिह्न है ?

सीता देवी ने देखा। सब उपस्थित व्यक्ति शान्त व मौन रहे। थोड़ी देर के बाद सीता देवी ने कहा कि 'लड़का है···इस आकार का है···इतनी लम्बाई है।'

बालक का जातकर्म व नामकरण संस्कार

लाला रामचन्द्र के घर २६-७-४० शुक्रवार सवा छः बजे प्रातः रेवती नक्षत्र मेष राशि में बालक उत्पन्न हुआ। जातकर्म संस्कार के लिए मुझे बुलाया। ग्यारहवें दिन ५-८-४० को यजुर्वेद की पूर्णाहुति की और नाम रखा यज्ञप्रिय।

उपदेश का असर शान्तिदेवी के मन पर—शान्तिदेवी और उनके पति गणेशदास गुरुद्वारा जाया करते थे। एक दिन गुरुद्वारा जाते समय मेरा उपदेश सुनने खड़े हो गए। दूसरे दिन मिलने आए तो शान्तिदेवी ने कहा कि 'मुझे बाल्यकाल से शृंगार और वस्त्रों का चाव था', टेढ़ा चीर (माँग) निकालती थी। आपका उपदेश सुना, बड़ा प्रभाव पड़ा, घर में जाकर चीर सीधा कर लिया।' अब प्रतिदिन यज्ञ में आने लगे। शान्तिदेवी ने कहा कि 'आपके मुख से कुछ शब्द ऐसे निकलते हैं जैसे आप हमारे इलाके के हों।' फिर पूछा 'आप कहाँ के हैं ?'

मैंने बताया—'ज़िला मुजफ़्फ़रगढ़ का हूँ।'

उसने कहा—'हम भी मुज़फ़्फ़रगढ़ के हैं—कोट अद्दू के।'

लाला गणेशदास ने कोट अद्दू में यज्ञ के लिए समय माँगा। मैंने स्वीकृति दे दी। कोट अद्दू में पहला यज्ञ लाला गणेणदास के घर ११-१-४० को हुआ। नर-नारी बड़ी श्रद्धा से वक्त पर आते।

दूसरा यज्ञ कोट अद्दू आर्यसमाज में हुआ। आर्यसमाज के पास टिक्कनराम नानबाई की दुकान थी। वह मांस पकाता था। बदबू रहती। मैंने भक्त किशनदास प्रधान आर्यसमाज को कहा, तो उन्होंने नानबाई को बुलवाया।

मैंने टिक्कनराम नानबाई को मांस के पाप बतलाए। वह बहुत

प्रभावित हुआ। ग़रीब आदमी था, परन्तु वीर निकला। जितना मांस पका हुआ था, कुत्तों को डाल दिया। उसके माता-भाई उसपर क्रोधित हुए, परन्तु उसने मांस का धन्धा हमेशा के लिए त्याग दिया—भूखा रहूँगा, पर मांस न बेचूंगा। अन्य बहुत लोगों ने भी मांस-शराव-तम्बाकू इत्यादि त्यागे!

पितृयज्ञ के उपदेश का प्रभाव—सेठ उत्तमचन्द और गणेशदास काठ-पालिया पर प्रभाव का वृत्तान्त भी अनोखा है। ये दोनों भाई बड़ धनी थे; व्यापार था, कारखाना भी था। सेठ उत्तमचन्द को वड़ा अभिमान था। दोनों भाई राम-लक्ष्मण की तरह इकट्ठे रहते, कहीं जाते तो इक्कठे जाते। पहले यज्ञ को तो इन्होंने मखौल समझा कि व्यर्थ घी नष्ट कर रहे हैं। दूसरे यज्ञ में मण्डप के बाहरवाली गली से उनका आना-जाना हुआ। ईश्वर जाने क्या प्रेरणा हुई, अन्दर चले आए कि देखें तो सही क्या हो रहा है? उस समय मेरा उपदेश 'पितृ भक्ति' पर हो रहा था कि जो लोग माता-पिता के प्रातः चरणस्पर्श-नमस्कार करते हैं और जो पत्नी प्रातः पति के चरणस्पर्श करती है और जो वहुएँ सास को नमस्कार करती हैं, उस घर में कभी लड़ाई नहीं होती, देवताओं का वास होता है।

यज्ञ में बैठते ही उनके कानों में ये शब्द पड़े। दोनों भाइयों का तो आपस में मेल था, परन्तु घर में सदा कलह रहती थी। माता दुःखी रहती। यज्ञ की समाप्ति के बाद जब दोनों भाई घर गए तो दोनों ने बारी-बारी से अपनी बूढी माता के चरणों में माथा टेक दिया। माता की आँखों में प्रेम के आँसू आ गए। गद्गद होकर आशीर्वाद दिया। फिर अपनी पत्नियों को कहा कि माता जी को माथा टेको और प्रतिदिन टेका करो। प्रभु की लीला कि एक ही दिन में अशान्ति-कलह समाप्त हो गई। सारा परिवार प्रतिदिन यज्ञ में प्रातः सबसे पहले पहुँचने लगे।

यज्ञ की पूर्णाहुति पर लंगर चला। सेठ उत्तमचन्द जैसा अभिमानी कंधे पर पानी के घड़े भर-भर नंगे पाँव ढोता रहा। दोनों भाई यज्ञ के लंगर में कमाल की सेवा करते रहे। शहर के लोग चकित हो गए और सेठ जी को कहते—'आप आराम कीजिए, दूसरी सेवा ले लीजिए। आप पानी न भरें, हम जो आपके परिश्रमी कर्मचारी खड़े हैं, हम यह काम करेंगे।' परन्तु सेठ उत्तमचन्द ने वह नम्रता दिखाई कि किसी को पानी न भरने दिया।

गृहस्थियों-व्यापारियों के सम्बन्ध में भी उपदेश हुआ करते थे। उनपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे मज़दूरों से प्यार से बोलते, नम्रता से बिठाते, मज़दूरी तत्काल दे देते, कभी घंटाभर की भी देर न करते।

परिवारों में ऐसी एकता और शान्ति का राज्य हुआ कि सब प्रशंसा, रश्क, स्पर्धा करते। फिर सत्संग में आने लगे। प्रतिदिन हवन-गायत्री-जाप सारा परिवार, छोटे-बड़े, बच्चों ने, देवियों ने आरम्भ कर दिया, जो अब तक भी करते हैं।

लाला गणेशदास को व्यवहार-सम्बन्धी उपदेश—एक दिन लाला गणेशदास (भारत ग्लास कं०) ने कई बातें व्यवहार-सम्बन्धी पूछीं। मैंने कहा—'किसी की अमानत रक्खो तो ब्याजरहित रखना। किसी से उधार न लेना, किसी की मेहनत-मजदूरी न रखना। इस धन-सम्पत्ति को अपनी न मानना। प्रभु न करे कभी धन का अभाव हो जावे तो यह रक्खी हुई अमानत और मज़दूरी चुकता न हो सकेगी। यहाँ भी अपयश होगा और परलोक में निर्धन और पराधीन रहोगे!' तब से तत्काल गौशाला, पंचायत का अमानती रुपया वापस कर दिया और इन्कार कर दिया कि आगे भी नहीं रक्खेंगे।

'सन्ध्या-सोपान' लिखने की अन्तःप्रेरणा

मैं व्रत में बैठ गया। 'सन्ध्या-सोपान' लिखने की अन्तःप्रेरणा हुई। प्रभु-आश्रय पर लिखना आरम्भ कर दिया।

जब मैं 'ऋतञ्च सत्यञ्च' मंत्र पर पहुँचा तो मेरी लेखनी बन्द हो गई। कोई मार्ग न मिलता; बन्द पड़ी रही। प्रार्थना और रुदन-समय अन्तर्-ध्वनि जागी। यह अघमर्षण मंत्र है पश्चात्ताप का मंत्र—'तुमने सन् १९०५ में दोस्त अलीखान झुग्गीवाले से इन्तकाल चढ़ाई का एक रुपया दस आने अपनी फ़ीस समझकर लिये थे। उन लोगों को विश्वास था कि टेकचन्द आर्यसमाजी हैं, घूँस नहीं लेता, इसकी फ़ीस उचित है। स्थाई पटवारी बनने पर और जुड़ीश्यल क्लर्क बन जाने पर भी तुम्हें विचार तो आया कि वह फ़ीस लेने का मेरा अधिकार नहीं था, परन्तु लौटाया नहीं। इसे जब तक चुकता नहीं करोगे, पाप का, मर्षण का मंत्र तुम्हें कैसे पथ-प्रदर्शन करेगा!' तुरन्त जतोई लाला कोटूराम बत्रा को पत्र लिखा कि मेरे खाते में से एक रुपया दस आने अपने साले महाशय आसानन्द, मंत्री आर्यसमाज झुग्गीवाला (जो अब महात्मा आनन्द भिक्षु जी वानप्रस्थी हैं) के द्वारा दोस्त अलीखाँ या उसकी सन्तान को चुकता कर देवे।' इस प्रायश्चित्त के बाद लेखनी अपने-आप चल पड़ी।

गोदान कहाँ करें ?

बाबू मनीलाल ने प्रश्न किया—'गोदान का बड़ा माहात्म्य कहते हैं, कहाँ देनी चाहिए ?'

मैंने कहा—'उस ब्राह्मण को देनी चाहिए जो यज्ञ करता हो, वेद का पाठ करता हो, या जिसके पास विद्यार्थी निःशुल्क पढ़ते हों। गौ का दूध यज्ञ के और ब्रह्मचारियों के काम लगावें। जब उस गौ की सन्तान बढ़ती जाय और वह ब्राह्मण इसी काम में लगता रहे, तब इन सबका पुण्य-फल दान करनेवाले को मिलता रहता है। इसलिए गोदान का बड़ा माहात्म्य होता है। आजकल के लोग जो निर्धन और अनपढ़ ब्राह्मणों को दे देते हैं, वे बेचारे फिर कसाइयों के हाथ बेच देते हैं तो उसका पाप भी दाता को लगता है।'

बाबू जी ने कहा—'आपको हम गौ दान देते हैं।'

मैंने कहा—'मेरे पास न चारा है, न सँभालनेवाला। आप भी तो लाहौर चल रहे हैं, वहाँ पूछताछ करेंगे।'

पूज्य पंडित ब्रह्मदत्त जी के आश्रम में गए। वहाँ पाणिनि विद्यालय में पढ़नेवाले ब्रह्मचारी थे। उन्होंने उत्तर दिया—'हमारे पास न स्थान है और न पालने का सामर्थ्य है, हम नहीं लेते।' ऐसे कई स्थानों पर ढूँढा, परन्तु सफलता न हुई।

शरणागत पतित का सुधार

१६-६-४० से १४-११-४० तक दो मास टोबा टेकसिंह में वार्षिक यज्ञ हुआ। उस यज्ञ में दूर-दूर के सज्जन व्रती बनने के लिए सम्मिलित होते रहे।

विजयादशमी के बाद २१-१०-४० का दिन था। टोबा टेकसिंह मण्डी का एक सुन्दर, पतला युवक, बहुत अच्छी धनियों जैसी पोशाक पहने हुए मेरे पास आया और बोला—'मैं भी व्रती बनना चाहता हूँ।' वह पक्का सनातन-धर्मी था। आढ़त की दुकान थी और चतुर काम करनेवाला था; परन्तु उसके अन्दर दोष भी सभी थे। मैं तो उसे एक धर्मात्मा व्यक्ति जानता था। उसने अपने सब दोष जैसे मांस, मदिरा, जुआ तथा वेश्यागमन आदि एक-एक कर सब बताए और रो पड़ा; खूब रोया और बोला—'अब मेरा सुधार करो, मैं आपकी शरण आ गया हूँ।'

जब उसने अपने दोष सुनाए तो मैंने कहा—'पहले प्रायश्चित्त करना

पड़ेगा। वह प्रायश्चित्त वड़े तप से होगा। यदि कर सको तो सब दोषों के त्याग का यज्ञवेदी पर सबके सम्मुख संकल्प करो और तब जप और व्रत करो। उसके वाद ही यज्ञव्रती बना के सम्मिलित कर सकेंगे।'

उसने कहा—'जैसा भी व्रत-तप करना पड़े, मैं तैयार हूँ।'

मैंने कहा—'अपने वस्त्र, बिस्तर, वर्तन, घर से ले आओ।'

उसने जल हाथ में लेकर 'अग्ने व्रतपते' के बल पर सब लोगों के सम्मुख संकल्प लिया और विस्तर आदि ले आया।

शीतकाल था, उसे व्रतियों के साथ रक्खा गया और उसका मार्गदर्शन किया कि दस दिन का व्रत-उपवास है। सात दिन तो जल तक नहीं पीना होगा। यह जब निभा लोगे तो तीन दिन आगे कुछ देंगे। उसने बड़े हर्ष से स्वीकार कर लिया और सवा लाख गायत्री का जप-अनुष्ठान मौनरूप से करने का व्रत लेकर एकान्त स्थान पर बैठ गया।

व्रतियों का असहयोग

सेठ कश्मीरीलाल सहगल और दूसरे कई सज्जन, जो इसी मण्डी के थे, मेरे पास आए और कहने लगे कि 'आपने वड़ी भूल की कि ऐसे व्यसनी व्यक्ति को स्थान दे दिया। हम तो इसके साथ रह नहीं सकेंगे, और न ही अपने बर्तनों में खाने देंगे, न अपने तालाव पर नहाने देंगे। क्यों? इसे आतशक आदि रोग हैं। हम इसके जीवन को जानते हैं।'

मैंने कहा--'उसने तो स्वयं सब दोषों को मेरे सामने प्रकट किया है, छिपाया नहीं; मैं तो उसे जानता नहीं था, मुझे तो नाम भी मालूम नहीं था!'

उन्होंने कहा—'इसका नाम हरभगवान कपूर, आढ़ती टोबा टेकसिंह है।'

मैंने कहा—'अब तो मैं उसे वचन दे चुका हूँ। वह कुटिया-यज्ञ की शरण में आया है। अब उसे तिरस्कृत करना पाप है, फिर अभी तो वह सात दिन बिना जल के रहेगा। आपके साथ तो खाएगा नहीं। हाँ, उसका सबसे पृथक् प्रवन्ध सोच लेते हैं।'

सब चले गए।

मैंने हरभगवान को बुलाया और कहा—'इस समय यदि सच्चे दिल से अपना सुधार चाहते हो तो अपना अपमान न समझना! आपके रोग से दूसरे व्रतियों को हानि न पहुँचे।'

वह रोग भी मान गया और बोला 'मैं वापस तो जाऊँगा नहीं; दृढ़

निश्चय करके आया हूँ और सच्चे मन से सुधार चाहता हूँ। मैं रात्रि को वाहर सोऊँगा; स्नान भी जल पृथक् भरकर वाहर किया करूँगा। तालाब में न घुसूँगा; वर्तन मैं अपने प्रयोग करूँगा। अव मेरी लाज आपके हाथ है, मैं वेश्या को भी धिक्कार आया हूँ।'

सात दिन निर्जल उपवास व जाप—वह सात दिन बिना जल के उपवास व जाप करता रहा। सातवें दिन उसे वड़ी सख़्त निर्बलता महसूस होने लगी। बिना जल के उसका प्राण खुश्क होता अनुभव हुआ। नगर से गंगाजल मँगवाकर घूँट-घूंट करके आचमनरूप में उसे देते रहे; बिल्कुल पुष्ट हो गया। आठवें दिन प्रायश्चित्त और शुद्धि के लिए उसे गोमूत्र पिलाया गया। नौवें दिन दूध दिया गया। दसवें दिन २१-१०-४० को उसे व्रती बनाया।

उसके इस कठिन और घोर तप से सब व्रती हर्षित हुए और उसे वधाई दी। मण्डी के लोगों में तथा सनातनधर्मियों में वड़ा आश्चर्य माना गया और सब प्रसन्न हुए। यज्ञ तक वह निरन्तर सावधान रहा। जैसे पृथक् रहता था वैसा रहा; स्नान-भोजन अपना सब पृथक् करता रहा; किसी को शिकायत का अवसर न दिया। यज्ञ के पश्चात् भी वह वड़ा धर्मात्मा रहा। हवन-जप उसका नित्य की घुट्टी बन गया। वेश्या कई वार उसके पास गई और मिन्नत की, परन्तु हरभगवान ने क़सम उठाकर उसे दूर कर दिया।

कुटिया के पवित्र परमाणुओं का प्रभाव

यह कई वार आज़माया गया कि करोड़ों जाप और लाखों आहुतियों के प्रभाव से कुटिया के परमाणु ऐसे थे कि कोई भी अश्लील मनुष्य एक बार कुटिया के अन्दर प्रवेश कर जाता तो वह पिछला सब-कुछ भूल जाता।

यज्ञशाला में व्रतियों और उन दर्शकों के सिवा जो मांस-मदिरा न खाते-पीते थे और धोती से बैठते, उनके अतिरिक्त शेष सब लोग बाहर बैठते और पतलून-पाजामावाले उच्च अधिकारी भी स्वयं नियमों का सम्मान करते जिनमें एस० डी० ओ०, सब-जज, तहसीलदार और वहाँ के उच्च अधिकारी थे।

मेरे प्रभु की भक्त-वत्सलता

मैं वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में व्रत में था कि कराची से लाला चमनलाल (फ़र्म सेठ धारीराम निहालचन्द) का एक भयानक पत्र मेरे पास

पहुँचा, जिसमें उन्होंने अपने घोर संकट का वर्णन किया कि 'इस समय में कोई चारा न देखकर सागर में डूब मरने को तैयार हो गया हूँ। मेरी फ़र्म के पत्र (काग़ज़ात), बही-खाते सरकार ने ज़ब्त कर लिये हैं। टैक्स का अभियोग बना दिया है। एक लाख रुपया वह टैक्स लगाना चाहते हैं। अधिकारी मुसलमान है, पक्षपाती है। एक तो काग़ज़ात और बही-खाते की ज़ब्ती के कारण अपयश, दूसरा, यदि एक लाख टैक्स लग गया तो हमारी कोठी की ख़ैर, नहीं।

पत्र में आगे लिखा था—'मैं निर्दोष हूँ। एक टैक्स-इन्सपैक्टर ने मेरे मैनेजर या हैडक्लर्क पं० चमनलाल को परामर्श दिया कि तुम ऐसे-ऐसे काग़ज़ात (हिसाब) बनाओ तो तुमको आयकर से बहुत बचाव रहेगा। निरीक्षक ने तो भलाई की, परन्तु उस निरीक्षक और टैक्स-कलैक्टर की आपस में अनबन थी। ईश्वर जाने, कैसे उसको ज्ञात हो गया! उसने छापा मारा। हमारी फ़र्म के बही-खाते ज़ब्त करके वह सरकार में ले गए। २५००० रुपया टैक्स का तो मैं ठीक देनदार हूँ, इससे अधिक मुझपर अत्याचार होगा। अब मेरे लिए कोई मार्ग-दर्शन करो, नहीं तो न मैं रहूँगा, न कोठी बचेगी।'

मुझे भी बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ कि एक धर्मात्मा सत्यवादी पर कैसी विपत्ति आई! मैंने प्रार्थना की, जाप किया, प्रातः ध्यान में बैठा और चमनलाल जी को लिखा—'घबराने की कोई बात नहीं है, आप निर्दोष हैं। यह सब-कुछ आपके मैनेजर ने किया है। सत्य में परमेश्वर आप बसता है, अवश्य रक्षा करता है। यदि तुम परमेश्वर पर विश्वास रखते हो कि वह सविता देव, गुप्त प्रेरक और रक्षक है तो मेरा अपना विश्वास है, यदि गायत्री और यज्ञ का उपासक सत्य और ईमानदारी को न छोड़े तो उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।'

पत्र के अन्त में लिखा—'आप वीर बनो! छाती तानकर पूर्ण सत्य बोलो!' जो-जो प्रश्न-उत्तर ध्यान-अवस्था में मैं उस कर-अधिकारी से करता रहा, वे सब लिख दिये कि वह यह प्रश्न करेगा, आप सत्य-सत्य कहते जाना और कहना—'मैं धार्मिक व्यक्ति हूँ, आर्यसमाज कराची का प्रधान हूँ, मैंने कोई काम बेईमानी से कभी नहीं किया। मेरी फ़र्म सचाई के लिए विख्यात है। यदि पूछना चाहो तो कराची-कार्पोरेशन के मेयर जमशेद जी से मेरा वृत्तान्त पूछ लेवें। यह ग़लती मेरे मैनेजर ने की है। उसके और मेरे हस्ताक्षरों में मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा व्यक्ति भेद शिनाख्त नहीं कर सकता। उसका नाम भी चमनलाल है, मेरा भी। एक-जैसे हस्ताक्षर हैं,

परन्तु मैंने अपना चिह्न जानने के लिए एक सूक्ष्म-सी विन्दु वना रक्खी है, नहीं तो मैं स्वयं भी नहीं पहचान सकता।' उस इन्स्पैक्टर का नाम कदापि न वताना, कदापि न वताना ! स्पष्ट कह देना कि चाहे मेरी कोठी रहे न रहे, मुझे किसी बात की परवाह नहीं, मैं नाम नहीं बताऊँगा; वचन का असत्य व कृतघ्न नहीं बनूँगा। चाहे वह प्रलोभन दे, चाहे वह धमकी दे, उस निरीक्षक के वाल-बच्चों के बेघर होने का भय रखना। तुम्हें कुछ भी नहीं होगा, कुछ भी नहीं होगा; निश्चय जानो ! तुम्हें उतना ही टैक्स लगेगा जितना तुम कहते हो, भर सकते हो।'

लाल चमनलाल को मेरा पत्र मिला तो उसका साहस बँध गया। वह सत्य पर पत्थर की चट्टान की न्याईं दृढ़ हो गया। सुनवाई के दिन उपस्थित हुआ; प्रश्न-उत्तर होते रहे। सबके उत्तर वह वैसे-के-वैसे देता रहा (जैसे पत्र में लिखे थे)।

साहिव ने कहा—'ऐसे टैक्स के बचाव का गुर हमारे विभाग के निरीक्षकों के सिवाय दूसरा कोई नहीं जान सकता। तुमसे किसी निरीक्षक ने ऐसा काग़ज़ वनवाया है ?'

लाला चमनलाल ने कहा—'हाँ।'

साहिव ने नाम पूछा तो चमनलाल ने कहा—'नाम तो मैं नहीं बता सकता।'

साहिव ने वहुत अनुरोध किया, तो लाला चमनलाल ने कहा—'चाहे मेरा कुछ हो जाए, मैं नाम नहीं बताऊँगा।'

साहिव पर बहुत प्रभाव पड़ा।

दूसरी-तीसरी सुनवाई पर लाला चमनलाल का पत्र आया कि साहिव ने ४२६०० रुपया टैक्स लगाया है। खाते भी सम्मानपूर्वक लौटा दिये हैं। फिर अपील की तो १६००० रुपया और भी छूट गया।

जिसे अपना जानो, उसे भगवान् का मानो !

ऋषिकेश में आते समय मार्ग में एक कुटिया में संत स्वामी जी के दर्शन किये। सायं को फिर उनके पास गए। अन्य लोग भी थे। वह महात्मा सचमुच सोम-मूर्ति थे। एक ने प्रश्न किया—'महाराज ! गृहस्थी के सुगम सुधार और पार होने का भी कोई मार्ग है ?'

वहुत शान्ति से उत्तर दिया—'जिसे अपना जानता है, उसे भगवान् का जाने। जैसे मुनीम अपने स्वामी के यहाँ रहकर उसके सब कार्य अपने जानकर लगन से करता है—मेरी दुकान, मेरा काम, मेरा-मेरा करता रहता

हैं, परन्तु अन्दर से पूर्णतया यही मानता और जानता है कि यह सब धन्धा तो स्वामी का है और स्वामी के लिए है। बस, गृहस्थी संसार में मुनीम की अवस्था बना ले तो सुगमता से पार हो जावेगा।'

कीड़े-मकौड़ों को मरने से कैसे बचाया जावे

दूसरा प्रश्न मैंने किया (जो स्वामी शिवानन्द जी के आगे भी रक्खा था)—'कई लोग मुझसे पूछते हैं, विवशता से रसोईघर में, या मार्ग में, या झाड़ू देते समय जो अदृश्य कीड़े-मकोड़े या जीव मर जाते हैं उनको कैसे हटाया जावे ?'

संत जी ने फ़रमाया—'गुरुदेव नानक की वाणी है—लेखा देकर हम नहीं छूट सकते, परमेश्वर की दया ही चाहिए। आर्य महर्षियों ने इन पापों के निस्तार के लिए पंच महायज्ञ अनिवार्य बताए हैं।'

'द्वेष' यज्ञ को विध्वंस करनेवाला है !

श्री होवनाराम साहुकार ज़मींदार के घर १८-२-४२ से २४-२-४२ तक यजुर्वेद का यज्ञ हुआ। भारी उपस्थिति होती थी। उसी हवेली में होवनाराम के बड़े भाई भी रहते थे, परन्तु भाइयों में परस्पर बोलचाल तक न थी। एक-दूसरे के प्राणलेवा शत्रु थे। मुझे पता लगा तो उपदेश दिया कि यह द्वेष यज्ञ का विध्वंस करनेवाला है। प्रभु-कृपा ऐसी हुई कि पूर्णाहुति से पहले ही उन भाइयों का ऐसे मेल हुआ कि फूट-फूटकर रो पड़े। उस मिलाप का नाम लोगों ने और पं० विश्वनाथ जी ने 'भरत-मिलाप' धरा और सब घरवाले जाप-हवन नित्य करने लगे जो अब तक भी करते हैं।

कुम्हार की वेद-निष्ठा

अमरपुर गाँव में चौधरी काशीराम जाति का कुम्हार था। मारवाड़ी सेठों की-सी पगड़ी-पोशाक पहनता। घर तो बड़ा था, परन्तु रहनेवाले जीव शायद दो ही थे—पति-पत्नी। किसी समय कलकत्ता में बड़ा व्यापार करता था, सेठ कहलाता था। श्रद्धालु ऐसा कि धर्म और ईश्वर की बात वेद से सुनता तो उसकी आँखों में प्रेम के आँसू आ जाते। बहुत हँसमुख था। ज्यों-ज्यों यज्ञ होता, उसकी श्रद्धा-भक्ति और उत्साह बढ़ता जाता।

ऐसा याद आता है कि उसने यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के मंत्र ४९ 'पूर्णा दर्वि परा पत…' की व्याख्या सुनी या किसी और मंत्र का प्रभाव था,

उस दिन का यज्ञ हो गया तो पूर्णाहुति पर घर के अन्दर गया और अपने सन्दूक से नोटों का बँधा हुआ एक बड़ा वण्डल, जो कई सहस्र रुपयों का होगा, निकालकर मेरे सामने किया कि 'लो ! मैं अपना सब-कुछ यज्ञों में फूंक दूंगा !' यह बन गई उसकी श्रद्धा वेदप्रचार और यज्ञों के लिए।

उस गाँव या उस सारे इलाक़े में एक यही आर्यसमाजी विचारों का था, अन्य सब पौणाणिक मत के माननेवाले परन्तु साधारण लोग थे।

मैंने चौधरी काशीराम से पूछा—'तू जो इतना बड़ा नोटों का वण्डल निकाल लाया, काम क्या करता है ?'

वह कहने लगा—'किसी का बुरा नहीं माँगता, याचक को ख़ाली नहीं भेजता। बस, मुझसे भी कोई बुरा नहीं करता।' यह थी उसकी धर्म में आस्था !

९-१-४३ से १३-१-४३ तक यज्ञ हुआ। खूब वर्षा होती रही। उसने नित्य हवन-जप की प्रतिज्ञा की। पूर्णाहुति के दिन अबोहर शहर से कई व्यक्ति आए। मार्ग ख़राब होने से नगर के लोग कतराते थे और रेत के कारण ऊँटों के सिवाय और कोई सवारी भी नहीं थी।

पण्डित ईश्वरचन्द और सावित्रीदेवी दोनों विद्वान् थे और अभ्यास में लगे हुए थे। उन्होंने युवावस्था में ही वानप्रस्थ ले लिया था। काशीराम ने उनको कहा—आप दोनों मेरे पास रह जाओ ! भजन करते रहो और भोजन व सेवा मेरी स्वीकार करो !'

सब व्रतियों ने हवन यज्ञ की प्रतिज्ञा की। अबोहरवाले छः विद्वानों ने जप-हवन आरम्भ कर दिया। अभ्यास तो पहले ही करते थे। लाला धर्मचन्द और विद्यावती, दोनों हवन-यज्ञ में ऐसे श्रद्धालु हुए कि उन्होंने मुझे कहा—'हमें उपदेश व दीक्षा दो ! हमें स्वामी विशुद्धानन्द में कोई आस्था नहीं रही।'

अबोहर में भी उपदेश हुए और वहाँ के बड़े-बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति वैदिक कर्मों में रुचि लेने लगे।

लाला धर्मचन्द बड़ा श्रद्धालु और धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। बड़ा पुरुषार्थी भी था। वह अपने पुण्य कर्मों और वर्तमान के पुरुषार्थ से बड़ा भाग्यशाली साहुकार बन गया। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में उसका नाम था। उसने अपने लड़के ब्रह्मप्रकाश के यज्ञोपवीत की योजना बनाई। कन्या पाठशाला में प्रबन्ध किया और बड़े समारोह से वह यज्ञोपवीत कराना चाहता था।

जब वेदी पर बैठे तो मैंने पूछा—'सब आ गए ?' उत्तर मिला—

'हाँ।' मैंने कहा—'आपकी बूढ़ी माता जी नहीं आईं…इतने बड़े पूर्वज का आशीर्वाद बहुत आवश्यक है।' विद्यावती ने कहा—'वह नहीं आती।' धर्मचन्द ने कहा—'चलो कार्य करो।'

मैं हैरान हो गया और दोनों से कहा—'तुम्हारा जप-तप, यज्ञ-दान-धर्म सब निष्फल हैं—करो चाहे न करो। जिस माता ने तुमको जन्म दिया, पाला, अपना पेट काटकर तुमपर निछावर हुई, यदि वह तुमसे रुष्ट हैं तो परमेश्वर तुम पर कभी प्रसन्न नहीं हो सकते।' (याद नहीं प्रभु ने क्या-क्या शब्द कहलवाए।)

दोनों आर्द्रहृदय हो गए और दोनों उठकर गए। माता शायद पृथक् कोठी में रहती थी, बहुत दुःखी होकर शाप देती रहती थी। जाते ही दोनों माता जी के चरणों में सिर डालकर पड़ गए। माँ तो माँ होती है। उसका हृदय पिघल गया। वह भी खूब रोई। दोनों का सिर उठाकर गले-छाती से लगाया और ढेरों आशीर्वाद दिये।

दोनों ने कहा—'अपने पोते का यज्ञोपवीत (जनेऊ) संस्कार महात्मा जी से कराओ!'

माता गद्गद होकर साथ आई और मुझे भी बहुत आशीर्वाद देने लगी। बहुत जनता थी। बड़ा व्यक्ति था, बहुत मेल-जोल (रसूख़) वाला था। नर-नारियों से मैदान भर गया। सँस्कार के पश्चात् उपदेश हुआ, प्रसाद बाँटा गया, सबका सत्कार किया।

अब माता रसोई की संरक्षक स्वामिनी है। सब प्रतिदिन माता के चरणों में नमस्कार करते हैं। घर में शान्ति भरी रहती है।

□

'भारत ग्लास कम्पनी' के मालिक लाला गणेशदास जी के कोट अद्दू में हर वर्ष यज्ञ होने के कारण ब्राह्मणों में कुछ ईर्ष्या-सी हो गई थी। स्वामी रामेश्वरानन्द (लाला गणेशदास की माता के गुरु) जो हर वर्ष यज्ञ में आते थे, धर्मशाला में टिकते-बैठते थे। वहाँ पण्डित लोग उनके पास आते-जाते थे। एक बार उन्होंने स्वामी जी के पास जाकर एक योजना बनाई कि टेकचन्द को संस्कृत और व्याकरण का ज्ञान नहीं; उसे वेदी पर प्रश्न करके नीचा दिखाया जावे।

पण्डित आभाराम विद्वान् ब्राह्मण थे। उनका पुत्र या भतीजा भी शास्त्री था। सब वेदी पर आ बैठे। स्वामी जी भी तख़्त पर विराजमान थे। वे पण्डित महोदय मेरे साथ बड़ा प्यार और दयाभाव रखते थे। यज्ञ में तो नहीं आते थे, परन्तु उस दिन उपर्युक्त भाव लेकर आ गए। मैं भी

उनको आया देख हैरान रह गया कि आज यह कैसे पधारे ?

परमेश्वर की अद्भुत लीला ही कहिए कि मेरी वाणी में ऐसा जादू जगा दिया कि मुझ अकिंचन का सिर नीचा नहीं होने दिया। एक मंत्र की व्याख्या में मैंने जो कहा—उसका सार कुछ इस प्रकार है—

'ब्राह्मण ही भगवान् की निज सम्पत्ति, ज्ञान-भण्डार, वेद का सँभालने वाला है। यह ज्ञान, सन्देश, आदेश, उपदेश उसी अन्तःकरण में प्रभु प्रदान करता है जो अत्यन्त पवित्रहृदय, राग-द्वेष-अहंकार से रहित होता है। जैसे अंग्रेज़ सरकार विलायत से कोई भी आज्ञा भारतीय जनता के लिए भेजती है तो वाइसराय को ही भेजती है, न कि सीधे जनता को; क्योंकि, वाइसराय ही उसका प्रतिनिधि है, ऐसे ही ब्राह्मण भी भगवान् के ज्ञान का संसार के प्राणियों के कल्याण के लिए प्रतिनिधि है। वाइसराय भी प्रजा को सीधी आज्ञा नहीं देता। वह भी प्रान्त-प्रान्त के राज्यपालों द्वारा क्रम से जनता तक पहुँचाता है। जिस ब्राह्मण में भगवान् के गुण-कर्म-स्वभाव होंगे, जो राग-द्वेष-अहंकार से रहित और पवित्र होगा, वही सच्चा ब्राह्मण है और उसी पर भगवान् के ज्ञान का प्रकाश होगा।

ज्ञात नहीं भगवान् ने इन शब्दों में कैसा रस भर दिया कि स्वामी जी और पंडित साहिबान गद्गद भी हुए, विस्मित भी। उनकी ज़बानों पर ताले लग गए। वे प्रशंसा करने लगे और कहा—'यह मंत्र हमें भी लिखवा दीजिये।'

स्वामी जी ने कहा—'जहाँ से आप बोल रहे हैं वही पुस्तक दे दीजिये।'

मैंने कहा—'यह लीजिये, वेद-मंत्र यह है। मुझसे कोई और बुलवा रहा था, मैं अपनी शक्ति से नहीं बोला।'

तब से मैं पंडितों का भी कृपापात्र बन गया।

पहले यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् लाला गणेशदास और उनकी धर्मपत्नी ने इच्छा प्रकट की हमें मंत्र का निज उपदेश दीजिये। रविवार पूर्णाहुति थी। सोमवार प्रातः लाला गणेशदास, शान्ति देवी और रामप्यारी-सहित लाला लोकनाथ को गायत्री मंत्र का उपदेश उनके घर पर एकान्त में किया गया। उस समय रामप्यारी की गोद में दूध-पीती एक बच्ची थी। लाला लोकनाथ व रामप्यारी का मैं इतना परिचित न था। उनके सम्बन्ध में जानकारी पीछे हुई।

दोनों सज्जन पूर्व-संस्कारी थे, परन्तु लाला लोकनाथ के संस्कार शायद बहुत सात्त्विक थे। उसने एकान्त में मुझसे यह प्रश्न किया—'दो

भाइयों में से एक रोगी रहता है, निर्बल है, योग्यता में कम है, तो क्या उसे बराबर का हिस्सा मिलना चाहिए ? क्यों मिलना चाहिए ?'

मैंने कहा—'भाई तो बाज़ू होता है। एक बाज़ू कमज़ोर हो तो दूसरा बाज़ू भार उठाता है। तभी तो भाई 'बन्धु' कहलाता है।'

उसने कहा—'यदि समझदार न हो तो ?'

मैंने कहा—'यदि शक्तिशाली ख़ुशी से त्याग कर सकता हो तो हर्ज नहीं, नहीं तो न्यून-अधिक भाग आवश्यक है। यह अहंकार भी न हो कि मैं अधिक भाग्यशाली हूँ। पता नहीं कौन उनमें भाग्यशाली है !'

लाला लोकनाथ और रामप्यारी को अपने आत्म-कल्याण की ऐसी लगन लगी कि उन्होंने जप-अनुष्ठान आरम्भ कर दिये। तब लाला गणेशदास लाहौर में रहते थे और यह दिल्ली की मार्किट में 'भारत ग्लास कम्पनी' की शाखा-दुकान पर साँझीदार थे। पहला काम तो उसने यह किया कि लाला गणेशदास से अपना भाग न्यून कराया। यद्यपि दोनों साला-बहनोई बिल्कुल सगे भाइयों की तरह रहते थे, परस्पर कोई भेद-भाव न था, तब भी लाला लोकनाथ ने समभाग लेना अन्याय समझा।

दूसरा, जब यज्ञ के पश्चात् दिल्ली की दुकान पर आए तो जिस कारख़ाने से शीशे का माल मँगवाते थे, माल के साथ बिल आया और पड़ताल की तो मुनीम की ग़लती से माल और जोड़ में ४० रुपये कम लिखा था। तत्काल उसे खटकी और उनको लिखा कि अपना खाता सँभालिये, यह बिल ग़लत है। उन्होंने लिखा कि हमने माल और रक़म ख़ूब चैक कर लिया है, कोई ग़लती नहीं है। फिर यह बिल लेकर ख़ुद गए, उनकी ग़लती सुझवाई, ४० रुपये उन्हें नकद दिये और लेखा ठीक लिखवाया। तब से कारखानेवालों में इनका बहुत प्रभाव पड़ा; विश्वास बढ़ गया। अपने काम में बड़ी ईमानदारी और सत्य से व्यवहार करने लगा। पाप और पराए पैसे से सख़्त डरता।

चन्दन की समिधा का यज्ञ

लाला गणेशदास जी धर्मपत्नी-सहित लाहौर में रहते थे। माता जी कोट अद्दू रहना चाहती थीं। जिस वर्ष उन्होंने चन्दन की समिधा से यज्ञ किया, चन्दन की लकड़ी लाहौर से ५० रुपये प्रतिमन के हिसाब से ३५ मन ख़रीद की। लाला गणेशदास और लोकनाथ जी को यज्ञों की लगन लग गई, इसलिए चन्दन से यज्ञ करने का विचार किया। कोट अद्दू में भी चन्दन से यज्ञ हुआ और मुजफ़्फ़रगढ़ में भी लाला लोकनाथ ने चन्दन से यज्ञ

कराया। कोट अद्दू के चन्दन के यज्ञ की धूम सारे प्रदेश में मच गई। उस वर्ष उन्होंने चालीस हज़ार रुपया कमाया। दिनों-दिन जहाँ धर्म में उन्नति होती, वहाँ अर्थ में भी भगवान् उन्नति देता रहा।

मैंने माता जी से कहा—'तुम सम्पन्न हो, तुम अकेली रहकर क्या करोगी?' उसे धर्म की लगन बहुत थी। कथा-पोथी, सत्संग आदि के अवसर बड़े शहरों में कम मिलते हैं। मैंने उनसे कहा—'माता जी! तुम प्रचार करो और उपकार भी करो!'

वह बोली—'कैसे करूँ?'

मैंने कहा—'तुम अपने घर दस-पन्द्रह बेलने लगा दो। फुटियाँ (कपास) खरीदकर कोठा भर दो और निर्धन विधवा औरतों को बेलने पर लगा दो। बीस-बीस स्त्रियाँ सदा तुम्हारे संग में रहेंगी। वे परिश्रम करती रहेंगी। तुम्हें रोनक बनी रहेगी। वे गायत्री जाप भी करती रहेंगी। कपास के लिए सूत के चरख़े लगा दो! इसमें भी बहुत-सी स्त्रियाँ तुम्हारे संग रहेंगी। कथा भी सुना दिया करना, जप भी साथ करती रहेंगी। उनकी जीविका भी बनी रहेगी, तुम्हारा भी दिल लगा रहेगा।'

उसे यह बात पसन्द आ गई।

लाला गणेशदास जी ने यह बात सुनकर खादी की खड्डियों के कारखाने की एक बड़ी योजना बना ली और मुझे तजवीज बताई। मैंने कहा—'यह तो और भी उत्तम काम है। मगर एक व्रत बना लें कि कोट अद्दू में रहनेवाला कोई स्त्री-पुरुष बेरोज़गार और भूखा न रहने दूँगा।'

धार्मिक संस्कार तो पहले ही थे। प्रभु ने उसे स्कीमें बनाने की योग्यता भी प्रदान की हुई थी। खूब विस्तार करते रहे।

एक बड़ी योजना के अधीन नगर के बाहर स्टेशन को जानेवाली सड़क पर एक बहुत लम्बी 'सराय काठपालियों की' किराया पर ले ली। ७-६-४२ को खड्डियों का मुहूर्त्त यज्ञ द्वारा कराया। ११० से ११५ तक कारीगर काम करते थे। आरम्भ में ७३ खड्डियाँ थीं, बढ़ते-बढ़ते १०८ तक पहुँच गईं।

प्रबन्ध और नियम—निम्नलिखित प्रतिबन्ध और नियम बनाए—

(१) कोई कारीगर मांस-मदिरा-तम्बाकू पीनेवाला न रक्खा जायगा।

(२) कोई कारीगर फ़ैशन नहीं रक्खेगा; सादा जीवन, सादी पोशाक होगी।

(३) प्रतिदिन जप और यज्ञ-ध्वन करना होगा।
(४) गायत्री का जप करते हुए वस्त्र बुनने होंगे।
(५) प्रार्थना करके ही सब काम आरम्भ करने होंगे।
(६) सब प्रतिदिन हवन-यज्ञ में सम्मिलित होंगे।
(७) यथाशक्ति सत्संग और उपदेश प्रतिदिन होगा, सबको सम्मिलित होना होगा।
(८) सब ईमानदारी से काम करेंगे; चोरी और असत्य का त्याग करेंगे।
(९) सेवा को अपना लक्ष्य बनावेंगे।
(१०) विक्रय का काम भी सचाई व ईमानदारी से होगा।
(११) स्त्री-पुरुष और जो परिश्रमी सूत आदि का परिश्रम करेंगे, उनको वर्तमान लोगों के रेट से दो आना प्रति सेर अधिक दिया जावेगा।
(१२) कोटअद्दू-निवासी को बेरोज़गारी का गिला न रहेगा।

शुभ भावनाओं का उत्तम प्रभाव—इस प्रवन्ध से जहाँ बेरोज़गारी का नाश हुआ, अधिक मजदूरी के कारण निर्धन देवियाँ तो क्या, अमीरों की घरवाली भी परिश्रम करने लग गईं। लोगों में, उच्चाधिकारियों में, सचाई और सद्भावनाओं का शुभ प्रभाव पड़ने लगा। लम्पट, कामचोर और आलसी नवयुवक कारीगर ऐसे सुधरे कि देखने-सुननेवाले चकित रह जाते। कोई मांस-मदिरा-तम्बाकू का सेवन न करता। कोई जाप-हवन-यज्ञ किये बिना रोटी न खाता। कारीगरों में ऐसा सेवा-भाव समाया कि नगर के गली-मुहल्लों की गन्दगी भी वे सेवादार बनकर शुद्ध करने लगे और गली-मुहल्लों में यज्ञ करने लगे। लाला गणेशदास ने अन्य नगरों में अपना घी-सामग्री देकर यज्ञों के लिए लोगों को उत्साहित किया।

इस सारे कारखाने के प्रवन्ध के लिए दिल्ली की दुकान बन्द करके लाला लोकनाथ को इस कारखाना का अध्यक्ष बनाया और एक अति दयानतदार मैनेजर लाला विद्याभूषण बहल नियुक्त किया, जो लाला लोकनाथ के आधीन उनकी आज्ञा-परामर्श से काम करते। लाला लोकनाथ एक क्रियात्मक जीवन का सात्त्विक आदर्श था। सब कारीगर उनका मान और उनसे अदब व लज्जा करते। सूत देसी और मशीनी दोनों क्रय करते और स्त्रियों से मज़दूरी पर देसी सूत के गुच्छे (अटेरन) कराते।

लाला गणेशदास की लड़की राजकुमारी अभी तीसरी कक्षा में पढ़ती

थी कि वह वेद उठाकर पढ़ने लग गई। दादी ने पूछा—'कुमारी! तुझे वेद किसने पढ़ाया ?' नन्ही-सी बच्ची कहने लगी—'माँ! वेद भी किसी से पढ़ा जाता है ? यह तो अन्दर से पढ़ा जाता है।' ऐसी उनकी संस्कारी पुत्री निकली।

लाला गणेशदास व लाला लोकनाथ की मेरे प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। लाला गणेशदास बड़े थे और लाला लोकनाथ छोटे थे। लाला लोकनाथ उनको व्यापार-कार्य में गुरु मानता था। प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में नमस्कार करता और सब-कुछ उनपर सौंपा हुआ था। अपने को वह एक यन्त्र-समान मानता था।

लाला गणेशदास ने मेरी अक़ीदत (धार्मिक विश्वास) में एक 'प्रभु आश्रित ट्रस्ट' बनाया। मुझे लिखा। मैंने लिखा—'ट्रस्ट-यादगार तो अपने माता-पिता की बनानी चाहिए।' परन्तु उन्होंने इसी नाम को श्रेष्ठता दी। पाकिस्तान बन जाने पर सब-कुछ वहीं रह गया।

□

महात्मा प्रभुआश्रित-साहित्य

- ☐ यज्ञ रहस्य
- ☐ पथ प्रदर्शक
- ☐ गायत्री रहस्य
- ☐ संध्या सोपान
- ☐ गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका
- ☐ गृहस्थ सुधार
- ☐ आदर्श गृहस्थी
- ☐ भाग्यवान गृहस्थी
- ☐ आत्मचरित्र
- ☐ दिव्य पथ
- ☐ निराकार साकार पूजा
- ☐ प्रभु का स्वरूप
- ☐ मंत्र योग
- ☐ स्वप्न गुरु और देवों का शाप
- ☐ सप्त सरोवर
- ☐ सेवा धर्म
- ☐ अमृत के तीन घूंट
- ☐ जीवन उत्थान के साधन
- ☐ कर्मभोग चक्र
- ☐ गायत्री कुसुमांजलि
- ☐ दुर्लभ वस्तु
- ☐ डरो वह बड़ा जबर्दस्त है
- ☐ सौम्य संत
- ☐ प्रगति पथ
- ☐ यज्ञ और जादूगरनी गौ
- ☐ पृथ्वी का स्वर्ग
- ☐ अंतःसाधना
- ☐ अमृत प्रसाद तथा अन्य